DAMAGE BOOK

Text cut book

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178505
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/V31D. Accession No. H2637

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

1957

दबेपाँव

(आपबीती शिकारी कहानियां)

वृन्दावनलाल वर्मा

लेखक--झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, कचनार, टूटे कांटे,
अचल मेरा कोई, अहिल्याबाई, भुवनविक्रम, मुसाहिब जू,
माधव जी सिंधिया, विराटा की पद्मिनी तथा लगन इत्यादि

आत्माराम एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मयूर प्रकाशन, झांसी।

प्रकाशक—

सत्यदेव वर्मा,

बी० ए०, एल-एल० बी०,

मयूर-प्रकाशन, झांसी।

मूल्य

दो रुपया

*

प्रथमावृत्ति

१९५७

मुद्रक—

स्वाधीन प्रेस, झांसी।

वक्तव्य

'दबे पाँव' अधिकांश में मेरी शिकार सम्बन्धी आत्मकथा है जो लगभग सन् १९२२ से आरम्भ होती है।

मैंने शिकार सम्बन्धी घटनाएं बहुत दिन हुए जब एक मित्र के आग्रह से टीप ली थीं। वे टीपें एक पत्रकार के पास पहुंचीं। उन्होंने एक अंश अपने पत्र में छाप लिया—मुझको सूचना पीछे मिली! उसके बाद पांडुलिपि कहीं गुम गई!!

परन्तु मैं डांगों, पहाड़ों और नदियों में इतना घूमा हूं कि घटनाएं कभी भूल—नहीं सकता हूं। अनेक घटनाओं की तो मुझको तारीखें तक याद हैं।

मेरे लिए सबसे बड़ी दुर्घटना एक भरके में गिरने की थी। परन्तु मैंने अपनी हार नहीं मानी।

कभी कभी तो बरसात में तेज बहते हुए नालों में होकर घूमता फिरा हूं। घंटों भीगा रहा परन्तु मुझको इस से हानि कभी नहीं हुई। आशा है कि दूसरों को भी न होगी।

शिकार कोई खेले या न खेले, परन्तु मैं अनुरोध करूंगा कि जंगलों और पहाड़ों में घूमे जरूर। घूमे ही नहीं भटके और दो चार बार अपने घुटने भी फोड़े!

मैंने तो अपनी मित्र-मंडली को भरपेट भोजन कर लेने के उपरान्त एक बार एक पहाड़ को लांघने तक के लिए विवश किया था। यात्रा थी तो कुल पांच छः मील की, परन्तु काफ़ी कष्ट साध्य थी। एक मित्र

पहाड़ की चढ़ाई पूरी करने के बाद ठप हो गये, बैठ गये दूसरे पहाड़ से उतरते उतरते रह गये। तीसरे बेतवा नदी के पार करने में झपकी ले गये—उस ऋतु में बेतवा में धार नहीं चल रही थी, परन्तु तली बहुत ऊबड़ खाबड़ थी। केवल शर्मा जी यात्रा के अन्त तक नहीं ऊबे थे।

जंगल पहाड़ों के लांघने के अभ्यास को यदि हम जीवन की कठिनाइयों से लड़ने और उनसे पार पाने की क्रिया में परिणत करदें तो किसी को क्या शिकायत हो सकती है? न भी कर सकें तो उस भ्रमण का आनन्द ही क्या कम मूल्यवान है?

वृन्दावनलाल वर्मा

लेखक सन् १६२६ में

लेखक सन् १९२९ में

'दबेपाँव'

एक—

कुछ समय हुआ, एक दिन, काशी से रायकृष्णदास और चिरगांव से श्री मैथिलीशरण गुप्त, साथ-साथ झांसी आये। उनको देवगढ़ की मूर्ति-कला देखनी थी—और मुझको दिखलानी थी।

देवगढ़ पहुँचने के लिये झांसी–बम्बई लाइन पर जाखलोन स्टेशन मिलता है। वहाँ से देवगढ़ लगभग सात मील है। बैलगाड़ी से जाना पड़ता है। जङ्गली और पहाड़ी मार्ग है।

मैं इससे पहले दो बार देवगढ़ हो आया था। सरकार देवगढ़ को अपनी देखरेख में लेना चाहती थी। जैन सम्प्रदाय देना नहीं चाहता था, क्योंकि देवगढ़ के क़िले में प्राचीन जैन-मन्दिर थे—जिनके प्रबन्ध की ओर उपेक्षा अधिक थी और व्यवस्था कम। परन्तु मैं जैन-समिति का वकील था। मन्दिर की अवस्था और व्यवस्था देखने के लिये जाना पड़ा था।

हम तीनों जाखलोन स्टेशन पर सवेरे पहुँच गये। मैंने आने की सूचना पहले ही भेज दी थी। स्टेशन पर उतरते ही कुछ हँसते-मुस्कराते चेहरे नज़र आये। एकाध चिन्तित भी। चिन्ता का कारण मैंने अपने मित्रों को सुनाया।

पहली बार जब गया था, समिति के मुनीम ने मेरे भोजन की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूछा था।

मैंने कहा, 'दूध पी लूँगा।'

मुनीमजी ने पूछा, 'कितना ले आऊँ ?'

मैंने उत्तर दिया, 'जितना मिल जाय।'

'सेर भर ?'

'ख़ैर। ज्यादा न मिले तो सेर भर ही सही।'

'दो सेर ले आऊँ ?'

'कहा न, जितना मिल जाय।'

'यानी तीन-चार सेर ?'

'क्या कहूँ, पाँच-छः सेर मिल जाय तो भी हर्ज नहीं।'

'पाँच-छः सेर!' मुनीम ने आश्चर्य प्रकट किया। सिर खुजलाया और मुस्कराकर व्यङ्ग करते हुए बोला—

'उसके साथ कुछ और भी ?'

मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, 'यह तुम्हारी श्रद्धा के ऊपर निर्भर है।'

मुनीम सिर नीचा करके चला गया। थोड़ी देर में एक छोटे घड़े में पाँच सेर दूध और थोड़ी सी जलेबी लेकर लौट आया। उसके सामने ही मैंने सब समाप्त कर दिया। जब

देवगढ़ से वापिस हुआ और झांसी जाने को हुआ, मुनीम मेरे सामने सिकुड़ता-सकुचाता हुआ आया।

बोला, 'वर्माजी, बुरा न मानें तो अर्ज़ करूँ—एक रसीद दे दीजिये।'

मैंने अपनी स्मृति को टटोला—किस बात की रसीद माँगता है, फ़ीस तो मैंने अभी ली नहीं है।

मैंने पूछा, 'किस बात की रसोद ?'

मुनीम ने नीचा सिर किये हुए ही कहा, 'पाँच सेर दूध और पाव भर जलेबी की रसीद। समिति वाले यक़ीन नहीं करेंगे कि वकील साहब पक्का सवा पाँच सेर डाल गये ! शक करेंगे कि मुनीम पचा गया।'

मुझे हँसी आई; मैंने रसीद दे दी।

उस स्टेशन वाले की चिन्ता का कारण सुनाते ही रायकृष्णदास और मैथिलीशरण क़हक़हे लगाने लगे। चिन्तित चेहरे पर शरारत की भी हलकी-पतली लहर थी। उस पर भी हँसी आ गई। मैंने कहा, 'अबकी बार वह सब कुछ नहीं है, मुनीम जी।'

हम लोग बैलगाड़ी से देवगढ़ पहुँचे। छकड़े के धक्कों और दच्चों को हम लोगों ने अपनी बातों और हँसी में दबा लिया।

देवगढ़ के क़िले के नीचे गुप्तकालीन विष्णु मन्दिर है। उस समय पुरातत्व विभाग ने उसको अपने अधिकार में नहीं लिया था। मन्दिर खण्डहल के रूप में था। पत्थरों में राम-चरित के दृश्य उभरे पड़े थे। एक शिलाखण्ड पर, जो

मन्दिर की एक बग़ल में सटा हुआ था, शेषनाग की शय्या पर लेटे हुए विष्णु, लक्ष्मी और कुछ देवताओं का उभार था। उसको देखकर हम लोग विस्मय और श्रद्धा में एक साथ डूब गये। देखते देखते आँखें थकी जा रही थीं, परन्तु मन नहीं भरता था। मूर्तियों के उस खण्डहल के चारों ओर जङ्गल और सुनसान। कुछ दूरी पर जङ्गली जानवरों की पुकारें और जङ्गल में काम करने वाले थोड़े से मनुष्यों के कभी-कभी सुनाई पड़ जाने वाले शब्द। पवन की सनसनाहट में बरगद और पीपल के पत्तों की खर्भरी। इन सब के ऊपर विष्णु की मूर्ति की बारीक मुस्कान थी। एक ओर ऊँची पहाड़ी पर हरे हरे पेड़ों में उलझा हुआ क़िला और उसके भीतर निस्तब्ध मन्दिर और शान्तिनाथ की मूर्तियां; और दूसरी ओर विष्णु की वह अभय देने वाली मधुर वरद मुस्कराहट। प्रकृति को गुदगुदी दे रही थी, वातावरण को विशालता, इतिहास को महानता और भविष्य को शक्ति, हम लोगों को उसने जो कुछ दिया उसके लिए हृदय बहुत छोटी जगह है।

विष्णु की नाक के बिलकुल अग्रभाग को किसी मूर्ति भंजक ने टांकी से छीला था, शायद वह समग्र मूर्ति के खंड करना चाहता था, परन्तु–जान पड़ता है—उसके हाथ, हथौड़ी और टांकी, सब कुंठित हो गये, क्रूरता और बर्बरता के ऊपर उस स्मित ने कोई मोहिनी डाल दी। अब उसका वशीकरण पुरातत्व–विभाग के ऊपर है। मूर्तियां यथावत रख दी गई हैं। अहाता बना दिया गया है और चौकीदार रहता है।

हम लोग क़िले के मन्दिरों को देखते फिरे। मूर्तियों की मुद्रा एकान्त शान्ति की थी। उन सबका एकत्र प्रभाव मन में सुनसान पैदा करता था। परन्तु उस सुनसान में होकर जब मन विष्णु के अर्धस्मित की ओर झांकता था, तब उस स्मित की झांकी में जीवन दिखलाई पड़ जाता था।

घूमते घूमते हम लोग क़िले के छोर पर पहुँचे। उस स्थान का नाम नाहर घाटी है। वहाँ खड़े होकर बेतवा नदी का ऊबड़-खाबड़ प्रयास देखा। क़िले की पहाड़ी से सट कर बहती है। नदी–तल में टोरें, पत्थर जल-राशियाँ और वृक्ष-समूह हैं। नाहर घाटी के नीचे गहरा नीला जल, और ऊपर, पहाड़ी पर से, बहता हुआ धूमरा काला शिलाजीत।

नदी तल में, एक टापू पर, क़तार बन्द वृक्ष—समूह को देखकर मेरे मित्रों को आश्चर्य हुआ। एक ही क़द के, एक से डौल के, क़तारों में खड़े पेड़ों को देखकर, मनुष्य के बनाये उद्यान का भ्रम हुआ। परन्तु उस वृक्ष समूह में प्रकृति और केवल प्रकृति की कला के सिवाय और किसी का हाथ था ही नहीं, इसलिए भ्रम को कोई गुन्जायश नहीं मिली।

पहाड़ों, जंगलों और नदी की करामातों के भिन्न भिन्न दृश्यों को देखते देखते मन थकता ही न था। यहाँ तक कि गांठ का सब खाना निबटा लेने के बाद भी, काली अंधेरी रात और बिकट बीहड़ मार्ग की चिन्ता न थी; गई रात जाखलोन पहुंच कर क्या खायेंगे इसकी कोई फ़िक्र नहीं। जब रात हो गई तब हम लोग वहां से टले।

बैलगाड़ी धीरे धीरे टक टक जा रही थी कि यकायक बैल रुक गये और बग़लें झाकने लगे। तेदुओं ने रास्ता रोक रक्खा था।

हम लोगों के हाथ में केवल बाबुआनी छड़ियां थीं। तेंदुओं के मुक़ाबिले के लिए! तोप तमन्चों के मुक़ाबिले के लिए अकबर इलाहाबादी ने अख़बार निकालने की सलाह दी है, परन्तु तेंदुओं का मुक़ाबिला बाबुआनी छड़ियों से किस तरह किया जाय इसकी सलाह हम लोग किससे लेते? अन्त में हल्ला गुल्ला करते हुए—और गाड़ीवान की बुद्धि का सहारा लेकर—किसी तरह जाखलोन लौटे। उस समय मेरे मन में एक भाव जागा था—यदि बन्दूक़ हाथ में होती तो कितना हौसला न बढ़ता।

मेरे पिता परम वैष्णव थे। वर्तमान वैष्णव धर्म की परम्पराओं में पले, हथियार-निषेध क़ानून के वातावरण में घुले बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल वाले के लिए बन्दूक़ एक ग़ैर ज़रूरी और दूर की समस्या थी। इसलिये वह भाव मन के एक कोने में समा गया।

कुछ दिनों बाद एक घटना फिर घटी।

मुझको कभी कभी वकालत के सम्बन्ध में बाहर जाना पड़ता था। एक बार बरसात में बैलगाड़ी से लौट रहा था। मार्ग में ही सांझ हो गई। पानी तो नहीं बरस रहा था, परन्तु आकाश बादलों से घिरा हुआ था। रात होते ही अंधेरा बहुत सघन हो गया। बैल चलते चलते इकदम ठिठक गये। बिजली चमकी और तेंदुआ बीच सड़क में दिखलाई

पडा। देवगढ़ की याद आ गई। परन्तु उस समय साथ में हल्ला-गुल्ला करने वाले लोग बहुत थे, यहां मैं, गाड़ीवान और मेरा मुन्शी, बस। एक उपाय सूझा। मैंने रूमाल फाड़ कर छड़ी के सिरे पर लपेटा। दियासलाई से आग लगाई और तेंदुए को हल्ला करके डराया वह चला गया, परन्तु एक निश्चय मन में छोड़ गया—जंगली जानवरों को भयभीत करने के लिए और अधिक रूमाल न फाड़कर, आगे कारतूस फोड़ूंगा। बन्दूक़ का लाइसैन्स लिया। एक ·३१० बोर की राइफ़िल सुलभ थी। ले ली। परन्तु उससे सन्तोष नहीं हुआ। तब ·१२ बोर दुनाली और ·२७५ बोर पचफैरा मॉज़र ली।

दो—

हिन्दी में कुछ न कुछ लिखने की धत पुरानी है। सन् १६०६ में छपा हुआ मेरा एक नाटक सरकार को नापसन्द हुआ। ज़ब्त हो गया और मैं पुलिस के रगड़े में आया। परन्तु रंगमंच पर अभिनय करने का शौक था और नाटक लिखने का भी—उपन्यास तो मेरे पथ में बहुत देर में आये। चार पाँच नाटक १६०८ में लिखे थे। कई बरसों बाद उनको दुबारा पढ़ा। मैने अपने से पूछा, 'ये किसने लिखे ?' बड़ी ग्लानि हुई। मैंने उन सबको फाड़कर पानी में फेक दिया। बन्दूक संभालने पर पुरानी कामनायें फिर जाग्रत हुईं। जंगल और पहाड़ों के भ्रमण ने विवश किया। अनेकों प्रकार के स्त्री-पुरुष वकालती पेशे में मेरे अनुभव में आते रहे। उनकी चाल-ढाल एक बंधे हुये ढांचे की थी। कुछ थोड़े ही ऐसे मिले जिनको झूठ और छल-कपट से घिन हो। परन्तु जगलों पहाड़ों और देहातों में जो नमूने मिले वे बिलकुल दूसरे और एक दूसरे से भिन्न। उनकी सचाई स्पष्ट और उनका झूठ भी उतना ही साफ़। यह बात नही कि गूढ़ और रहस्यमय लोग न मिले हों। काफ़ी संख्या में मिले, और नगर वालों से कहीं अधिक गहरे। उनकी तह को पहुँचने में आश्चर्य होता था—अन्वेषण, विश्लेषण और संश्लेषण के विद्यार्थी को परम सन्तोष। मुझको यह सब बन्दूक़ की ओट में मिला। शायद वैसे भी मिलता; और लोगों को यों ही प्राप्त हो जाता है, परन्तु मुझको शायद इसी तरीके से लिखा-बदा था !

मैं काम करते करते प्रत्येक शनिवार की सन्ध्या की बाट जोहा करता था। जो कुछ भी सवारी मिली, अपने मित्र श्री अयोध्याप्रसाद शर्मा को लेकर, शनिवार की शाम को चल दिया; रविवार जंगल में बिताया और सोमवार को सवेरे काम पर वापिस।

इस क्रम में सबसे पहले मुझको कई प्रकार के हिरन मिले।

झाँसी से २४, २५ मील दूर एक मित्र की बारात में शामिल होना था। जिस दिन टीका था उसी दिन झांसी की कचहरी में अनिवार्य काम था। दूसरे दिन छुट्टी थी। काम चार बजे खतम हुआ। और कोई सवारी नही थी, एक तांगा किराये किया। थोड़े से कपड़े लिये, गरमी की ऋतु थी,—वैसे भी मैं साथ में बहुत कम कपड़े लेकर बाहर जाता हूँ—'१२ बोर दुनाली बन्दूक ली और पचास कार्तूस। तेज़ी से भी जाते जाते लगभग नौ बजे रात को गाँव जब करीब एक मील रह गया, पहुँचा। इस जगह पहूज नदी का रपटा मिला। रपटे के एक किनारे खुसफुस करते हुये बहुत से आदमी दिखलाई पड़े। उनको गिन नहीं सका, परन्तु बीस से ऊपर होंगे। उनके पास बन्दूकें थीं। तांगे को देखकर वे कुछ छिपने का उद्योग करने लगे। तांगे वाला डरा। मैंने उसको उत्साहित किया और तुरन्त दुनाली में दो कार्तूस डाल कर तैयार हो गया।

उन लोगों ने कोई रोक-टोक नहीं की। तांगा निकल गया। मैं जब बरात में पहुँचा बड़ी धूमधाम देखी। इतनी रोशनी कि आँखें चौंधियाने लगीं। दूल्हा जेवरों से लदा हुआ

था और अनेक बराती सोने और मोतियों से अपने कंठ सजाये हुये थे। बरात में कम से कम पचास बन्दूकें थीं और पुलिस की एक पूरी गारद। रक्षा के पूरे उपकरण थे। मैंने सोचा, 'यदि मैं डाकू होता तो केवल दो संगियों को लेकर सारी बरात लूट लेता। इस करकरी रोशनी में बरात वाले बन्दूक़-चियों की चकाचोंध खाई हुई आँखें कुछ भी न कर पातीं, मैं अंधेरे में ओट लेकर चार पांच बाढ़ें दाग़ कर सारी बरात को भगा देता।'

जैसे ही यह कल्पना मन में आई मुझको पहूज नदी के रपटे पर मिले हुये उन बन्दूक़ वालों का स्मरण हो आया।

बरात के नायक मेरे मित्र हिन्दी स्कूल के मेरे छुटपन के सहपाठी थे। मैं उनको अलग ले गया। आपस में काफ़ी बेतकल्लुफ़ी थी। मैंने पूछा,

'इतनी बन्दूक़ों और पुलिस गारद की ज़रूरत क्यों पड़ी ?'

'तुम्हें मालूम नहीं ? मजबूतसिंह डाकू चालीस पचास आदमियों का गिरोह लिये यहीं कहीं आसपास है। रखवाली के लिये ये सब बन्दूक वाले और पुलिस के सिपाही आये हैं।' उन्होंने उत्तर दिया।

'जी हाँ, खूब रखवाली होगी ! मज़बूतसिंह थोड़ी सी आड़ लेकर इस प्रचण्ड रोशनी में इकट्ठे समूह पर जब गोली चलावेगा तब दस बीस आदमी थोड़ी सी देर में ढेर हो जायेंगे और बाक़ी भगदड़ में शामिल होकर हवा हो जायेंगे। पुलिस कुछ नहीं कर सकेगी।'

'क्या किया जाय ?'

'दूल्हा का सब गहना उतार कर एक बक्स में रक्खो, और इन पुरुष गुण्डों ने जो सजावट की है उसको भी हटाकर बक्स में रखवा दो। इस काम को सावधानी के साथ चुपचाप करो। मैं डाकुओं को देख आया हूँ। अभी लगभग एक मील की दूरी पर हैं। थोड़ी देर में पास की पहाड़ी में आ छिपेंगे और मौका पाकर छापा मारेंगे।'

'गहने वाले बक्स का क्या होगा ?'

'बरात का डेरा इस पहाड़ी के नीचे वाले पेड़ों की छाया में है। यहीं पर बक्स रख दो। डाकू धोके में आ जायेंगे। मैं एक आदमी को साथ लेकर यहीं रह जाऊँगा, तिलक-टीके में नहीं जाऊँगा। तुम बन्दूक़ वालों के कई दस्ते बनाओ। कुछ को बरात से अलग, अंधेरे अंधेरे में आगे चलने दो, कुछ को बरात के अगल-बगल और कुछ को बिलकुल पीछे।'

मेरे मित्र मान गये। उन्होंने मेरे कहने के अनुसार काम किया। बरात टीके के लिये चल दी।

मैंने डेरे में बक्स रक्खा। मेरा साथी चिरगाँव का करामत था। वह मेरा शिकारी था। उसके पास इकनाली ·१२ बोर कार्तूसी बन्दूक थी। हम लोगों के साथ और कोई न था।

डेरा क्या था, छाया के लिये एक पाल था। उसके अगल बग़ल कनात या आड़ ओट कुछ न थी। बड़े बड़े पेड़ अवश्य थे। पास ही पहाड़ी थी। हम लोगों के पास रोशनी वाला एक हंडा था। मैंने करामत से उस हंडे को हटवा कर पहाड़ी

की तली में रखवा दिया। पाल के नीचे अंधेरा हो गया और पहाड़ी पर उजेला।

मैं और करामत फ़र्श पर औंधे लेट गये। बन्दूकें भर कर छतिया लीं। मेरा रुख पहाड़ी की ओर था और करामत का मुझसे उल्टा।

इस लेटाई—लाइंगलोड—को लिये हुये बहुत विलम्ब न हुआ होगा कि पहाड़ी में लोगों के इकट्ठे होने की आहट मिली। मैंने करामत को संकेत किया और चुप पड़े रहने के लिये धीरे से कहा।

पहाड़ी में वे लोग जल्दी जमा हो गये। आश्चर्य करते होंगे किस बेढंगे ने पहाड़ी के पड़ोस में रोशनी का हंडा रख दिया।

डेरे में सुनसान प्रतीत करके उन्होंने एक मूर्खता की। आग जला कर तमाखू पीने लगे। हंडे की रोशनी और तमाखू के लिये की हुई आग के प्रकाश में वे मेरी पहिचान में आ गये। मैंने उनसे कहीं बढ़कर ज्यादा मूर्खता की।

मैं चिल्लाया, 'यहाँ है सब गहना! है तुम में से किसी की छाती में बाल जो आकर इसको उठाये? उठाओ सिर और किया मैंने गोली से चकना चूर।'

करामत ने धीरे से मेरी प्रतारणा की। बोला, 'बड़े भैया, ऐसी चुनौती नहीं दी जाती।'

मैं अपने घमण्ड और बड़े बोल पर मन में सहमा। परन्तु बात मुंह से निकल चुकी थी। अब तो उसका निभाना ही

बाक़ी रह गया था। उसी समय करामत की ओर से एक बिच्छू मेरी तरफ़ आया। करामत ने धीरे से मुझको सावधान किया।

मैंने कहा, 'होगा। इतनी बेवकूफ़ी करने के बाद अब मैं बिच्छू से बचने के लिये बैठ नहीं सकता।' बिच्छू मेरे कंधे के पास से आगे बढ़ा। मैं चुपचाप पड़ा था, वह धीरे धीरे मेरी कुहनी के पास आ गया। शायद न काटता, परन्तु यदि डंक मार देता तो एक हाथ बेकार हो जाता और यदि डाकू मेरी शेखी का जवाब देते तो मैं अपने घमंड के समर्थन में एक हाथ भी न उठा पाता। मैंने एक हाथ में बन्दूक़ संभाली और दूसरे हाथ की मुट्ठी से बिच्छू को खतम कर दिया।

अब डाकुओं से भिड़ जाने के लिये पूरी सांस मिल गई।

परन्तु चोरों, बटमारों और लुटेरों में इतना साहस कहां होता है जो इस प्रकार की चुनौती को स्वीकार करते ?

वे धीरे धीरे खिसक गये।

पौ फटने के समय बरात लौटी, तब तक हम दोनों उसी लेटाई में अपनी पसलियों का भुरकस करते रहे।

बरात में मेरे कई शिकारी मित्र भी थे। एक लंगड़ा दढ़ियल शिकार का लती भी। उसके पास बन्दूक न थी, परन्तु खाने के लिये हिरन चाहता था। साथ हो लिया।

चलते ही, थोड़ी देर बाद, हिरनों के झुण्ड के झुण्ड मिले। हिरन सब मिलाकर सौ के ऊपर होंगे। बड़े बड़े सींग वाले करछाल सब झुण्डों में दस बारह से कम न थे। उदय होते हुये सूर्य की कोमल किरणें उनकी चिकनी चमकती हुई देहों पर

रिपट रही थीं। आंखें बड़ी बड़ी। इन्हीं की उपमा तो कवियों ने अपनी कामिनियों को दी है। गोली न चलाने का मोह उत्पन्न हुआ। परन्तु किसानों की खेती का भरपूर नुक़सान भी तो ये ही करते हैं। इनसे बढ़कर केवल सुअर और रोज–गुराय नील गाय–करते हैं। मैंने मोह को छोड़ दिया, अब केवल चुनाव का सवाल सामने था–इनमें से किसको निशाना बनाऊँ ?

एक बहुत पुराना, बड़े सींग वाला एक झुण्ड का नायक था। उसको एक ही गोली से समाप्त कर दिया। बाक़ी भाग गये।

परन्तु यह निशाने पर चढ़ा बहुत देर में था।

हिरन की शिकार काफ़ी श्रम और सावधानी चाहती है। कभी नेहुर कर चलना पड़ता है, कभी दर्जनों गज़ पेट के बल, कभी घुटनों के बल और कभी कभी गोद में बन्दूक़ रखकर पीठ के बल घिसटना भी पड़ता है।

उस हिरन को लेकर करामत इत्यादि पहूज नदी के किनारे पहुँचे। एक भरके में पेड़ की छाया के नीचे जा बैठे। नदी के उस पार से यह स्थान दिखलाई पड़ता था। नदी में धार पतली थी। पाट भी चौड़ा न था।

हम लोग रात भर के जागे थे। मैं एक पत्थर के सहारे टिक गया। बाक़ी लोग रूमाल या साफे से मुँह ढक कर सो गये। इनमें लंगड़ा दढ़ियल भी था। करामत बैठा बैठा बीड़ी पीने लगा।

इतने में उस पार एक देहाती दिखलाई पड़ा। उसने वहीं से पुकार लगाई, 'आग है, आग ? तमाखू पीने है।'

करामत ने शरारत की। व्यङ्ग के स्वर में उत्तर दिया, 'हुश्रो है श्राग हमाये पास। श्राश्रो इतै हम देवें श्राग।'

देहाती ने समझा डाकुश्रों का गिरोह है; वह उल्टे पांव भागा।

परन्तु उसके भागने का सही कारण उस समय मेरी समझ में नहीं श्राया था।

थोड़ी ही देर में एक श्रौर श्रादमी नदी के उसी किनारे पर श्राया। वह कुछ क्षण खड़ा रहा। फिर धीरे धीरे हम लोगों के पास श्राया। श्राकर बैठ गया। उसमें श्रौर करामत में बातचीत होने लगी।

श्रागन्तुक ने कहा, 'हिरन तो बढ़िया मारा।'

करामत ने शेखी बघारी, 'हम लोगों का निशाना चूकता थोड़े ही है।'

'श्राप कहाँ से श्रा रहे हैं?'

'जहां से मन चाहा।'

'कहाँ जायेंगे?'

'जहाँ सींग समावें।'

'श्रौर लोग भी साथ हैं?'

'ज्यादा सवाल करने से गड़बड़ हो जायगी।'

श्रब मुझको सन्देह हुश्रा—करामत कोई श्रभिनय कर रहा है।

श्रागन्तुक जाने को हुश्रा। उसी समय लंगड़े दढ़ियल ने श्रपने मुँह पर से साफ़े के छोर को हटाया। श्रागन्तुक के श्रचरज का ठिकाना न रहा।

यकायक उसके मुंह से निकला, 'ओफ़ ! आप लोग बहुत बच गये। थोड़ी ही देर में न जानें क्या से क्या हो जाता !'

लंगड़े दढ़ियल ने आगन्तुक का अभिवादन किया। 'मामा राम राम !'

लंगड़ा आगन्तुक का भान्जा था।

करामत हँसकर बोला, 'क्यों, क्या हो गया ?'

आगन्तुक ने उत्तर दिया, 'हो तो कुछ नहीं गया, पर हो जाता। मैं पुलिसमैन हूँ। यहां आसपास हथियारबन्द पुलिस लगी हुई है। मज़बूतसिंह डाकू के गिरोह की खबर लगी थी कि यहीं कहीं है। आप लोगों पर उसी गिरोह के होने का सन्देह था। आप अपने जवाब से खुद डाकू बन बैठे। यदि मेरा भान्जा साथ में न होता तो मैं अपने अफ़सर से जाकर कहता कि डाकुओं के गिरोह का एक खंड इसी भरके में है। गोली चलती।'

मैं पत्थर का सहारा छोड़कर बैठ गया।

मैंने कहा, 'और हम लोग समझते कि हमको डाकुओं ने घेर लिया। दुतर्फ़ा गोली चलती और मौतें होतीं।'

आगन्तुक ने करामत को फटकार बतलाई, 'आप लोग बरात में आये हैं। आपको साफ़ कहना चाहिये था। आपकी इस भद्दी ग़लती के कारण न जाने कितनी जानें जातीं।'

मैंने भी करामत को एक नरम गरम व्याख्यान दिया।

बुन्देलखण्ड में डाकू जंगलों, पहाड़ों और भरकों का ही सहारा पकड़ते हैं और वहीं शिकारियों का भी भ्रमण होता

है। ऐसी दशा में बिना पहिचान वाले लोग किसी भ्रम को मन में बसा लेवें तो कोई अचरज नहीं।

और फिर, रात वाली शेखी की तौल में यह शेखी तो बिलकुल ही पोच थी। निरुद्देश्य और बेकार।

उस लंगड़े दढ़ियल की उपस्थिति ने बरदान का काम किया, नहीं तो मैं करामत मियाँ और शायद मेरे अन्य साथी भी उस दिन ढेर हो जाते।

तीन—

चिंकारे का शिकार करछाल की भी शिकार से अधिक कष्ट साध्य है। चिंकारा बहुत ही सावधान जानवर होता है। उसे संकट का सन्देह हुआ कि फुसकारी मारी और छलांग मार कर गया। हिरन संकट से छुटकारा पाने के लिये दूर भाग कर दम लेता है। चिंकारा थोड़ी दूर जाकर ठहर जाता है। फुसकारी मारता है और फिर छलांग भर कर थोड़ी दूर जाकर ठहरता है। चिंकारा झोरों और भरकों में अधिक रहता है। तिल और गेहूँ के उगते हुये पौधों को खोंट खोंट कर नुक़सान पहुँचाता है, परन्तु हिरन की अपेक्षा कम। हिरन से छोटा होता है। सींग भजे हुये और सीधे खड़े होते हैं। मांदी के भी सींग होते हैं, परन्तु छोटे छोटे। हिरन की मादी के सींग नहीं होते हैं। और बातों में ये दोनों मिलते जुलते हैं। ये दोनों दिन में दो तीन बार पानी पीते हैं। रात भर कुछ न कुछ खाते ही रहते हैं, दिन में भी काफी चरते हैं, परन्तु सोने को भी कई घन्टे देते हैं। सोते समय इनके झुण्ड के दो एक हिरन खड़े होकर चौकसी करते हैं। खतरे का शक हुआ कि पहरे वालों ने चौकड़ी ली और बाक़ी भी तुरन्त सचेत होकर भाग निकले।

दोनों वर्गों का जनन समय वसन्त ऋतु है। जब पलाश के पत्ते झड़ जाते हैं और उसमें बड़े बड़े लाल फूलों के गुच्छे लगते हैं तब इनके छौने कूदने फादने लायक़ हो जाते हैं।

दोनों जानवर काफ़ी मज़बूत होते हैं। पेट की गोली खाकर बहुत दूर निकल जाते हैं। मर तो जाते हैं, परन्तु

उनको पीड़ा होती है। सिर से लेकर जोड़ तक का निशाना ही शिकारी को अपयश न देगा।

किसान और बहेलिये रस्सियों का जाल बना कर इन जानवरों को पकड़ते हैं और लाठियों से मार डालते हैं। परन्तु यह शिकार नहीं है।

हिरन और चिकारे सूर्यास्त के पहले ही खेती चरने के लिये जंगल से निकल पड़ते हैं और सूर्योदय के उपरान्त खेतों को छोड़ते हैं। बहुत से तो खेतों में या उनके बिलकुल करीब के झाड़ झंकाड़ में गुप्त हो जाते हैं और अवसर मिलते ही खेतों में घुस पड़ते हैं। जब गेहूँ और चनों के पौधे बड़े हो जाते हैं तब इनको छिपने का काफ़ी सुभीता मिल जाता है। ज्वार और बाजरा के पेड़ों में तो अनेक झुण्ड बसेरा ही डाल लेते हैं। ऐसी हालत में बिना हाँके के इनकी शिकार दुस्साध्य है।

इनके हांके का शिकार बहुत संकटमय है। खड़ी खेती के दो तीन ओर से हंकाई होती है। एक कोने पर बन्दूक वाला खड़ा हो जाता है। ये जानवर झुण्ड बांध कर खेतों में से नहीं निकलते। कोई इधर होकर भागता और कोई उधर होकर। शिकारी अनुभव-हीन हुआ तो वह भी मोहवश अपना ठौर ठिकाना छोड़ देता है और धाँय धाँय कर उठता है। कभी कभी इसका फल भयंकर होता है। गोली या छर्रा बन्दूक़ को छोड़ते ही फिर शिकारी के बसका नहीं रहता, और वह किसी भी हंकाई वाले में जाकर धस सकता है।

ये जानवर घने जंगल या पहाड़ों में नहीं रहते। बिखरी सकरी झाड़ी और भरके ही इनके घर हैं। इन्हीं स्थानों में

गांव वाले या जंगलवासी घास लकड़ी के लिये घूमते फिरते रहते हैं। इसलिये शिकारियों को बहुत सावधानी के साथ इन स्थानों में बन्दूक़ चलानी चाहिये। मैं यह बात उपदेश के तौर पर नहीं लिख रहा हूँ। आप बीती घटनाओं के अनुभव की बात कह रहा हूँ।

एक बार हिरन में से छर्रे का एक दाना निकल कर एक गांव वाले के पैर में ठस गया था। कुछ कठिनाई के साथ निकलवा पाया था। हड्डी बच गई नहीं तो उसकी एक टांग बेकार हो जाती।

यह दुर्घटना मेरी बन्दूक़ से नहीं हुई थी, परन्तु हुई थी मेरे ही निकट।

एक बार एक मित्र की गोली से मेरी खोपड़ी भी बाल-बाल बची। मेरे वे मित्र कान से काफ़ी कम सुनते थे। निशाना भी बहुत सुहावना नहीं लगाते थे। परन्तु मेरे साथ मटरगश्त करने की कामना उनके मन में बहुत दिन से थी। कई बार मैंने उनकी इच्छा को टाला। परन्तु एक बार तो वे बिलकुल ही सिर हो गये। साथ गये। जंगल में छोटे छोटे नाले थे। उन नालों की तली में हांके वाले और नालों के किनारों पर हम लोग एक दूसरे के कन्धों के सामने थे। फ़ासला काफ़ी था। हंकाई के पहले तै हो गया था कि मुँह के सामने की तरफ़ बन्दूक़ चलाई जावेगी, न तो अगल-बगल और न पीछे—।

हंकाई में जानवर निकले। वे नाले की तली की सीध में भागे, परन्तु तितर-बितर होकर। मेरे मित्र पहले तै की हुई

सब बातों को भूल गये, नाले में उतर पड़े और मेरी ओर बन्दूक़ दाग दी। उनकी बन्दूक़ का निशाना जानवर पर तो नहीं पड़ा। एक समूचा टीला उनकी अनी पर चढ़ा और गोली फिसल कर भनभनाती हुई मेरे सिर पर से निकल गई!

मैंने उनको चिल्लाकर बुलाया। जब पास आये, मैंने उनसे पूछा

'यह क्या किया, साहब?'

मेरे वे मित्र हकलाते थे।

उन्होंने हकलाकर उत्तर दिया, 'क···क···क्या···ज···ज··· जानवर घायल···हो···हो···हो गया?'

मैंने कहा, 'जि···जि···जि···जी नहीं। केवल मिट्टी का टि···टि···टि···टीला थोड़ा सा घायल हुआ। और मेरी खो···खो···खो···खोपड़ी बिलकुल बच गई।'

फिर हँसी के तूफान में हम लोग उस घटना को भूल गये।

इन मित्र को सावधानी का यह पहला पाठ शायद रट-रट कर याद करना पड़ा होगा। परन्तु इस बात के बतलाने में कोई हानि नहीं जान पड़ती कि वे इस पहले 'श्री गणेश' को बिलकुल भूल गये।

एक बार जंगल और बेतवा की ऊबड़-खाबड़ भूमि का सपाटा भरने के बाद उन्होंने दुबारा तिबारा घूमने का हठ किया। उनका हँस हँसकर हकलाना और किसी भी परस्थिति में रुष्ट न होना हमारी छोटी सी शिकार-मण्डली को बड़ा भला लगता था, इसलिये उनको संकट-सम्पन्न समझते हुये भी मैं साथ लेने लगा।

फागुन का महीना था। खरी चांदनी रात। तै हुआ कि पत्थरों और ढोंकों के समूहों में हम लोग बिखर कर बैठें। इन पत्थरों के अगल बगल से सन्ध्या के उपरान्त प्राय: जानवर निकल पड़ते थे। हम सब अपने अपने चुने हुये स्थानों पर जा बैठे।

बैठे बैठे रात के १० बज गये। साथ में खाना था, और पास ही बेतवा का निर्मल जल। भूख भी लग आई थी। जानवर कतराकर निकल चुके थे। कोई आशा शिकार की न रही। मैं अपने स्थान से उठा। सीटी बजाई। अन्य मित्र मेरे पास आकर इकट्ठे हो गये, परन्तु ऊँचा सुनने वाले मित्र न आये। सीटी का उन पर प्रभाव हो क्या पड़ सकता था? हम लोग उनके स्थान की ओर चले। पैर पटकते हुये, खांसते हुये और थोड़ी सी बात करते हुये भी। ज़्यादा शोर इसलिये नहीं कर रहे थे क्योंकि नदी ही में रात को यत्रतत्र लेटना था—शायद सवेरे तक कोई शिकार हाथ लग जाय।

अच्छा प्रकाश था। मित्र के कान का भरोसा तो न था, पर आंख का था। आवाज़ न सुनेंगे तो आंख से हम लोगों को देख तो लेंगे। तो भी हम लोग डरते डरते उनके पास पहुँचे—लगता था कहीं जानवर समझ कर बन्दूक़ न दाग़ दें!

देखें तो मित्र एक पत्थर से टिके हुये खुर्राटे कस रहे हैं। बन्दूक़ दूसरे पत्थर से टिकी हुई है! मैंने चुपचाप उनकी बन्दूक़ उठाई और एक साथी को दे दी। वे सब ज़रा दूर चले गये। थोड़ी देर बाद मैंने नाम लेकर उनको पुकारा। वे हड़बड़ा कर उठ बैठे। मैं उनके सामने एक पत्थर पर बैठ गया। वे उस

पत्थर को नहीं देख सकते थे जिसके सहारे थोड़ी देर पहले उनकी बन्दूक़ टिकी हुई थी।

वे समझे उनकी नींद को मैंने नहीं भाँपा।

कुछ लोग एक आंख से सबको देखते हैं, परन्तु वे किसी कान भी दुनियां भर की कुछ नहीं सुनते थे—और सबको ऐसा ही समझते भी थे।

बोले, 'बाट जो···जो···जो···हते बड़ी देर हो गई। कोई भी जानवर नहीं निकला।'

मैंने कहा, 'मेरे पास से एक जानवर निकला। मैंने बन्दूक़ चलाई। घायल होकर इसी ओर आया है। यहीं कहीं पड़ा होगा।'

वे बारीकी से मेरे चेहरे पर शरारत को ढूंढ़ने लगे। मैं बिलकुल गम्भीर था। बिचारे कुछ भी न ताड़ पाये।

मैंने प्रस्ताव किया, 'चलो न ज़रा ढूंढ़ें।'

हम दोनों उठ खड़े हुये।

उन्होंने आंख बचाकर बन्दूक की खोज की। बन्दूक़ तो पहले ही खिसका दी गई थी। मैं आहट लेने के बहाने दूसरी ओर मुँह किये था।

मित्र परेशान थे—बन्दूक़ कहां गई? कैसे चली गई? रहस्य देर तक छिपा नहीं रह सकता था।

मैंने कहा, 'वह घायल जानवर तुम्हारी बन्दूक़ लेकर चम्पत हो गया है।'

वे समझ गये। और, हँस पड़े। उनको स्वीकार करना पड़ा, 'मैं ज़रा देर के लिये झप गया था। इस बीच में आप आये और मेरी बन्दूक़ उड़ा ले गये।'

मैंने कहा, 'बाट जो···जो···जो···ह···ह···ते बड़ी देर हो गई। यहां तक कि···ज···ज···ज···जानवर बन्दूक़ ही ले भागा।'

अधमुंदे कान वालों को शिकार का साथी बनाना अनगिनत आफ़तों को न्योता देना है।

इसके बाद फिर शायद ही कभी वे मेरे साथ आये हों। साथ आते परन्तु मैं सदा टालाटूली करता रहा। यह टालाटूली उनके हित में तो शायद थी ही, हम लोगों के हित में निर्विवाद थी।

यह सब जानते हुये भी नये शिकारियों को साथ लेना ही पड़ता है, परन्तु इनको आरम्भ में, किसी अनुभवी शिकारी के साथ लगा देना श्रेयस्कर है। इससे उनका कोई अपमान न होगा और शिकारियों तथा हांके वालों की जान विपद में पड़ने से बची रहेगी।

चार—

एक जगह जमकर बैठने की शिकार काफ़ी कष्टप्रद होती है। झांकड़ या पत्थरों के चारों ओर ओट बना लेते हैं और उसके भीतर जानवरों की अगोट पर शिकारी बैठ जाते हैं—ऐसे ठौर पर जहाँ होकर जानवर प्रायः निकलते हों। उनके खांद—चीन्हें—दिन में देख लिये जाते हैं, प्रतीत हो जाता है कि सन्ध्या के उपरान्त और सूर्योदय के पूर्व यहीं होकर निकलेंगे। इस आड़ ओट की बैठक को गड्ढा भी कहते हैं। गड्ढा कभी कभी वास्तव में गड्ढा भी होता है—खोदकर बैठने योग्य बनाया हुआ, परन्तु चौगिर्दा आड़ओट वाली बैठक को भी शिकारी भी गड्ढा कह देते हैं। इसमें शिकारी लगभग सुरक्षित रहता है और जानवर इसके पास से असावधान होकर निकलता है। परन्तु आड़ओट वाले गड्ढे को कभी कभी दो एक दिन के लिये यों ही पड़ा छोड़ देते हैं। क्योंकि, जानवर एक नया बिजूका सा देखकर कतराकर निकल जाता है। जब यह नया विघ्न उसके अभ्यास में प्रवेश पा जाता है तब वह इससे सटकर भी निकल जाता है, और, तब वह शिकारी का अवसर बन जाता है।

परन्तु एक 'गड्ढे' के निकट यदि दूसरे शिकारी का 'गड्ढा' हो तो बहुत सावधानी बर्तने की आवश्यकता है। सीधी सावधानी यह है कि निश्चित समय के पहले किसी भी अवस्था में शिकारी अपने गड्ढे को न छोड़े। नहीं तो मौत में बहुत कम कसर रह सकती है।

मेरा एक मुवक्किल वान्डर वाल्डन नाम का था। उसके माता पिता हॉलैण्ड के निवासी थे। वह हिन्दुस्थान में उत्पन्न हुआ था। एक एंग्लोइंडियन स्त्री और उसके पति के बीच में तलाक़ का मुक़द्दमा चला। वान्डर वाल्डन को इस मुक़द्दमें में दिलचस्पी थी। तलाक़ होने के बाद इस स्त्री का पुनर्विवाह वाल्डन के साथ होने जा रहा था।

विवाह दूसरे दिन होने को था। गड्ढा बनाकर रात में शिकार के लिये बैठने का निश्चय करके वाल्डन अपने एक मित्र के साथ झांसी के एक निकटवर्ती जंगल में गया। वाल्डन के मन में साध थी शिकार में एक जानवर हस्तगत करके अपने मित्रों को विवाह के उपलक्ष में दावत देने की।

वे दोनों 'गड्ढे' बनाकर एक दूसरे से थोड़ी दूर जा बैठे। दोनों से दूर एक जानवर निकला। वाल्डन गड्ढे में बैठे बैठे उकता उठा था। गड्ढे से बाहर निकला और जाते हुये जानवर के लिये आगे बढ़ा। उसके मित्र ने इसी को जानवर समझा।

'धांय' उसके मित्र ने गोली छोड़ी। वाल्डन पर वह गोली ऐसी पड़ी कि फिर वह अपने घर जीवित नहीं पहुँच पाया।

एक दुर्घटना तो हाल ही की है।

कुछ लोग बड़े चाव के साथ शिकार खेलने के लिये धसान तटवर्ती लहचूरा के जंगल मैं सन् १९४५ में गये। जंगल में जाते जाते उनको रात हो गई। फैलफुट्ट होकर शिकार खेलने की इच्छा मनमें उदय हुई और सब अलग अलग हो गये।

एक साहब के पास टॉर्च था और दूसरे चश्मा लगाये थे। जंगल में घूम-घुमावों के कारण चाल सीधी तो रक्खी ही नहीं जा सकती। चश्में वाले साहब टॉर्च वाले के सामने आ गये। दबे दबे आ ही रहे थे, टॉर्च वाले ने समझा कि कोई जानवर है। टॉर्च जगाया। उसके प्रकाश में सामने वालों का चश्मा चमक उठा। टॉर्च वाले ने समझा तेंदुआ है। चश्मे वाले ने सोचा होगा, इतनी रोशनी में भी क्या पहिचाना न गया हूँगा ? वे न बोले, चुप रहे। टॉर्च वाले ने धाड़ से गोली छोड़ दी। चश्में वालों पर गोली ऐसी अचूक पड़ी कि वे उफ़ भी न कर पाये। धम से गिरे और उनका प्राणान्त हो गया।

छोड़ा हुआ हथियार हाथ का रह ही कैसे सकता है ? और फिर बन्दूक़ की गोली !

एक बार मेरे मित्र शर्मा जी मेरी गोली से बाल बाल बचे थे।

शर्मा जी एक गड्ढे में बैठे थे, और मैं दूसरे में। कोई जानवर थोड़ी दूरी पर निकला। शर्मा जी को चैन न पड़ा। वे अपना ठिया छोड़कर जानवर की ओर रेंगे। मैंने उनकी आहट पर गोली छोड़ी। गोली एक पत्थर से टकराकर निकल गई।

पांच—

हिरन वर्ग के जानवरों के लिये ढूंका या ढुंकाई का शिकार भी अच्छा समझा जाता है। इस शिकार में काफ़ी परिश्रम पड़ता है। पेट के बल रेंगते हुये भी चलना पड़ता है; पहले ही कहा जा चुका है।

कुछ लोग बन्दूक़ के घोड़े चढ़ाकर इस प्रकार की शिकार करते हैं। मेरी समझ में बन्दूक़ के घोड़े चढ़ाकर चलना केवल व्यर्थ ही नहीं है किन्तु अत्यन्त संकटपूर्ण भी है। ज़रा से झटके से घोड़े गिर सकते हैं और फिर वे बन्दूक़ वाले को या किसी भी सामने वाले को, बिना किसी पक्षपात के, साफ़ कर सकते हैं।

एक बार हिरन की शिकार में ढूंका करते करते मैं काफ़ी दूर निकल गया। एक परिचित मेरे साथ थे। वैसे तो वे बिलकुल साथ रहे, एक जगह संग छूट गया। वहीं कुछ हिरन दिखलाई पड़े। मेरे घोड़े पहले से चढ़े थे। पेड़ की एक डाल घोड़े से उलझी। घोड़ा गिरा और बन्दूक़ चल गई। धक्के के कारण बन्दूक़ के घोड़े का सिरा मेरे अंगूठे की जड़ में धस गया और वे परिचित भाग्य से बच गये।

झांसी से दो शिकारी हिरन की शिकार के लिये बेतवा किनारे गये। इनमें से एक को बन्दूक़ के घोड़े चढ़े रखने की आदत थी। पैर फिसला। बन्दूक़ को ठोकर लगी। नाल पेट की ओर लौट पड़ी और साथ ही घोड़े को ठोकर लगी। गोली

पेट पर पड़कर रीढ़ की हड्डी को तोड़कर बाहर निकल गई। घर पर बिचारे की लाश आई।

जानवर पर बन्दूक़ चलाने के लिये इतना काफ़ी समय मिलता है कि खाली बन्दूक़ भी ले चलने में कोई हानि नहीं है। फ़ुर्ती के साथ बन्दूक़ में कार्तूस डाले जा सकते हैं; घोड़े चढ़ाये जा सकते हैं और फायर किया जा सकता है।

हिरन की शिकार गाड़ी पर बैठकर और टट्टी की ओट में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। हिरन पूरे धोके में आ जाते हैं और मारे जाते हैं। कुछ शिकारी इस प्रकार की शिकार को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे कहते हैं कि यह कसाईपन है, शिकार खेलना नहीं है। परन्तु जिनको जानवरों के मारने और खाने खिलाने से ही प्रयोजन है वे इस तरह की आलोचना की परवाह नहीं करते।

टट्टी की शिकार में कुतूहल, परिश्रम और चतुराई के होते हुये भी उक्त 'कसाईपन' और अधिक मात्रा में है। क्योंकि शिकारी हिरन को १५, २० क़दम के फ़ासले से सहज ही मार लेता है, चूक ही नहीं सकता।

टट्टी का शिकार प्राय: दो शिकारी मिलकर खेलते हैं। मैंने तो कभी नहीं खेली, परन्तु उसका विवरण खेलने वालों से विस्तारपूर्वक सुना है।

बांस की कमचियों या सीधी डालों वाले किसी भी पेड़ की पतली लकड़ियों से एक हलका ढांचा बनाया जाता है। फिर इसमें पेड़ के ताज़े पत्ते खोंस लिये जाते हैं। शिकारी इसको हाथ से थामें हुये आगे बढ़ते हैं—धीरे धीरे। हिरन

समझता है कि हवा से हिलने वाली कोई झाड़ी झंकाड़ है। धोके में आ जाता है। टट्टी में शिकारी के देखने और बन्दूक चलाने के लिये छेद रहते हैं। जब टट्टी वाले शिकारी हिरन के पास आ जाते हैं, तब टट्टी खड़ी करली जाती है। हिरन अनिश्चय में उसको देखता है—और इतने में ही बन्दूक चल जाती है। अनाड़ी की भी नहीं चूकती।

तीर कमान वाले टट्टी की शिकार का बहुत सहारा लेते हैं क्योंकि उनके लिये भोजन प्राप्ति का यह सहज उपाय है। उनके लिये अब भी वही प्राचीन युग है—जीवन और मरण के बीच का कोई भी मध्यमार्ग वे नहीं जानते।

प्राचीन काल में भी गाड़ी से हिरन का शिकार खेला जाता था। बड़े लोग रथ पर से खेलते थे।

नाटक का दुष्यन्त तेज़ी के साथ रथ के घोड़ों को भगा सकता था, परन्तु तेज़ी के साथ भागते हुये घोड़ों को हिरन छुला मिली नहीं देते, क्योंकि सीधे नहीं भागते और तिरछे भागते हुये हिरन का पीछा घोड़े वाला रथ हर जगह नहीं कर सकता। किन्तु नाटक की बात और है।

कल्पना जगत के बाहर का शिकारी, जिसका अस्तित्व यथार्थ में हो, बहुत धीरे चलने वाली बैलगाड़ी पर बैठता है या बहुत धीरे खिसकाई जाने वाली टट्टी के पीछे पीछे चलता है। परन्तु ढुकाई के बराबर परिश्रम इन दोनों में से किसी में भी नहीं है।

चीतल (स्वर्णमृग)

छः—

चीतल, स्वर्णमृग, हिरन वर्ग का पशु समझा जाता है। परन्तु इसके सींग फन्सेदार होते हैं। यह बहुत ही सुन्दर होता है। इतना सुन्दर कि कभी कभी शिकारी इसकी भयानक हानि पहुँचाने वाली कृतियों को भूल जाता है। इसकी खाल पीली खैरी होती है और उस पर सफेद चित्ते होते हैं। सिर से लेकर रीढ़ तक एक काली खैरी चौड़ी रेखा होती है जिस पर पूंछ तक दुतर्फ़ा बुन्दे होते हैं। रंगों की भिन्नता पर जब उगते हुये सूर्य की किरणें रिपटती हैं तब चीतल सचमुच स्वर्णमृग जान पड़ता है।

परन्तु जब रात भर ज्वार, तिली, गेहूँ और चने के खेतों को चर कर ऊँची ऊँची बिरवाइयों को लांघ कर चीतल अपने कूकों से घण्टे दो घण्टे की नींद पाये हुये किसान को जगाता है तब वह किसान इसको स्वर्णमृग के नाम से नहीं पुकारता। वह जलती हुई आँखों से अपनी उजड़ी हुई खेती को देखता है और सूखे भर्राये हुये कण्ठ से केवल गालियाँ देकर रह जाता है।

चीतल बहुत ही चालाक और सावधान जानवर है, झुण्डों में रहता है। नर झुण्ड के बीच में या लगभग पीछे रहता है। नेतृत्व मांदी करती है। जंगलों और पहाड़ों में इस जानवर का निवास है। किसान दिन भर काम करके सन्ध्या के बाद ही अपने खेत के ढबुये पर चला जाता है। आग सुलगा कर खेत की सुनसान मेड़ पर रख दो और तमाखू पी पाकर ढबुये में जा लेटा। दस ग्यारह बजे तक हू हा की, फिर झपकी आ

गई। जब तक हू हा की तब तक चीतल दबे पांव बिरवाई के आस-पास टोह लेता हुआ घूमता रहा। जैसे ही आधी रात का सन्नाटा आया, किसान ने नींद ली और चीतल ने खेत की ऊँची बिरवाई लांघी। बहुत धीरे धीरे खेत में आया, पीछे पीछे सारा झुण्ड। फिर पड़ा खड़ी फ़सल पर ताबड़-तोड़। झुण्ड सारे खेत में फैल जाता है। अन्धेरी रात में तो जागते हुये किसान या शिकारी को कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता; उजेली रात में भी तितर–बितर झुण्ड आसानी से लख में नहीं बीधता।

एक रात का सताया हुआ किसान या जागा हुआ शिकारी जब दूसरी रात सावधान होकर तनमन एक कर डालता है तब वह झुण्ड उस रात उस खेत में आता ही नहीं।

एक दो रात का अन्तर दे देता है। किसान सोचता है आई बला टल गई। परन्तु बला अन्तर देकर फिर आती है। जब किसान फ़सल गाहता है तब भाग्य को ठोकता और कोसता है।

मैंने पचास के ऊपर तक का झुण्ड देखा है। गेहूँ के एक खेत में खुदवां गड्ढा बना कर मैं रात भर बैठा। चीतल एक दिशा से खेत में आकर बिखर गये। बन्दूक़ की मार में न आये, मौज से चरते रहे और सवेरे के पहले आराम के साथ खिसक गये। मैं अवसर की ताक ही में गड्ढे के भीतर पड़ा रहा।

बहुत से शिकारी गड्ढे के भीतर व्यर्थ नहीं पड़े रहते, उनकी बन्दूक को चीतल मिल जाता है, परन्तु ऐसा हमेशा

नहीं होता। इसीलिये शिकारियों का शकुन अपशकुन-विश्वास विख्यात है। ज़रा सा भी खुटका हुआ उनके मन में अपशकुन का रूप धारण कर बैठता है। मार्ग में ब्राह्मण मिल जाय तो असगुन, ख़ाली घड़ा, छींक, बिल्ली का रास्ता काटना, स्यार का दाईं ओर से बाईं ओर निकल जाना, लोमड़ी का दुम को उठाकर भागना इत्यादि ऐसी अगणित क्रियायें हैं जो इस बात को प्रमाणित करती हैं कि जंगली जानवर इतने चतुर होते हैं कि सहज ही हाथ नहीं आते। भरे हुये घड़े, तिलकधारी और बग़ल में पोथीपत्रा दबाये हुये ब्राह्मण तथा बाईं ओर से दाईं ओर जाने वाले स्यार या सांप के मिलने पर भी दिन भर भटकने के बाद शाम को ख़ाली हाथ और सूखा मुँह लेकर लौटना पड़ता है।

चीतल का शिकार बहुत सावधानी के साथ की जाने वाली ढुकाई में हो सकता है। परन्तु बाव काटकर ढुकाई की जाय तभी सफलता संभव हो सकती है। अन्यथा, चीतल हंकाई में आसानी से मिल जाता है।

मुझको एक बार एक बड़ा और लम्बे सींगों वाला चीतल दूर से दिखलाई पड़ा। जंगल में काफ़ी आड़ें ओटें थीं। मेरे पास ३० बोर राइफ़िल थी। यह बोर छोटे बड़े सब प्रकार के शिकार के लिये उपयोगी है।

मैं ढुकाई करता हुआ उस चीतल की ओर बढ़ा। काफ़ी मेहनत की। उसका प्रमाण मेरे छिले हुये घुटने और कांटों से कोहनियों तक रुले हुये हाथ थे। मैं बाव काटता हुआ धीरे धीरे, चुपचाप इतनी सफ़ाई के साथ उसके पास पहुँच गया

कि मेरे उसके बीच में केवल एक झाड़ी रह गई। गज़ों में अन्तर दस बारह मात्र का रह गया होगा। मैने धीरे धीरे सांस साधी। चीतल के चाहे जिस अंग का निशाना बना सकता था। जब दम बिलकुल सध गई; मैं धीरे से उठा; कन्धे से बन्दूक़ जोड़ी और घोड़े की लिबलिबी दबाई।

परन्तु हुआ कुछ भी नहीं। बन्दूक़ की नाल में कार्तूस ही न था! कार्तूस मैगज़ीन में पड़े थे, और घोड़े पर ताला। ढुकाई आरम्भ करने के पहले मैं नाल में कार्तूस का डालना भूल गया था। मुझे चीतल ने देख लिया। वह कूका मारकर जगल में विलीन हो गया। कुछ दूरी पर मेरा एक देहाती साथी था। उसने मुझको चीतल के पास पहुँचा हुआ देख लिया था। बन्दूक़ का उबारना भी उसने लक्ष कर लिया था।

जब मैं उसके पास पहुँचा तब उसको निस्सङ्कोच पूरी कहानी सुना दी। वह भीतर भीतर कुढ़ा और ऊपर से हँसा।

बोला, 'इतने दिना तो हो गये, पै सिकार को लच्छन न आओ!' अर्थात् इतने दिनों में भी शिकार की तमीज़ न आई! परन्तु भरी हुई बन्दूक़ और खुले हुये घोड़े ले चलने की अपेक्षा ख़ाली बन्दूक़ ले चलने का यह कुलक्षण कहीं अच्छा।

मेरी खोपड़ी दूसरी बार चटकते-चटकते बच गई।

दिन भर घूमते घामते बीत गया था। सध्या के समय अपना सा मुंह लिये हम सब लौट रहे थे। मेरे एक सहवर्गी के कन्धे पर ·२७५ बोर राइफ़िल थी। नली में कार्तूस पड़ा था। घोड़ा चढ़ा हुआ और ताला खुला हुआ! सहवर्गी मेरे आगे थे। उनकी बन्दूक़ की नाल एक मील के मार्ग में बहुधा मेरे

भेजे की ठीक सीध में हो हो जाती थी। जब हम लोग गांव में आये एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गये। सहवर्गी ने बन्दूक़ ज़िमीन पर टेकी और नाल आकाश की ओर करदी। आकाश और बन्दूक़ की मुहार के बीच में पीपल की डालियां थीं। उन्होंने लिबलिबी पर अंगूठा रक्खा। आदत से लाचार थे। अगूठा ज़रा दबा। लिबलिबी खट से हुई और ज़ोर का धड़ाका हुआ। राइफ़िल की गोली पीपल की डाल पर पड़ी। डाल हिल गई। तब जाना कि राइफ़िल उस एक मील के मार्ग में मेरे माथे का क्या कर सकती थी।

भरी हुई बन्दूक़ को यों ही रख देना बहुधा ग़ज़ब ढाया करता है। तो भी लोग असावधानी करते हैं। मैंने भी असावधानी की है, परन्तु अब सीख गया हूँ।

एक बार शिकार से लौटकर आया, परन्तु दुनाली में कारतूस भरे छोड़ दिये। कुछ दिन वह वैसी ही रक्खी रही। एक दिन एक मनचले ने उसको उठाया। उसको घोड़ा खीचने की सूझी। खीचा, पर वह हाथ से सटक गया। बन्दूक़ 'धड़ाम' हुई। नाल के सामने मेज़ थी और मेज़ के आगे कमरे की दीवार। गोली ने मेज़ को फोड़ दिया और फिर दीवार में जाकर धस गई।

तब से मैं जंगल से लौटते ही बन्दूक़ को ख़ाली कर लेने का अभ्यासी हो गया हूँ।

हँकाई करने के समय एक ग़लती प्रायः की जाती है। हांकने वाले बेहद होहल्ला करते हैं। इस नियमहीन हल्ले के कारण जानवर सिर पर पैर रखकर भागते हैं। लगान पर

बैठे हुये शिकारी परेशान हो उठते हैं, हांकने वालों और लगान पर लगे हुये शिकारियों का श्रम अकारथ जाता है—और कुछ शिकारी अपने आसनों को छोड़-छाड़कर इधर उधर भाग खड़े होते हैं और एक दूसरे का निशाना बनाते हैं।

हांकने वालों के लिए दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। एक तो, उनको सिवाय कंकड़ बजाने के और कोई आवाज़ नहीं करनी चाहिये—इसका अपवाद शेर, भालू और तेंदुये की शिकार है, क्योंकि ये जानवर देर में जंगल छोड़ते हैं और साधारण हल्ले गुल्ले की परवाह नहीं करते हैं। दूसरे हांका करने वालों को किसी भी हालत में अपनी पांत को छोड़कर लगान वालों की पांत के आगे नहीं जाना चाहिये।

एक जंगल में हम कुछ लोग चीतल का शिकार हांके के साथ करने की धुन में थे। लगान पर मैं और मेरे मित्र शर्मा जी एक ही ठौर पर थे। दूसरे लगानों पर अन्य शिकारी थे। हाँका बग़ल से होता आ रहा था। हम लोगों के सामने ज़रा दूर झाड़ी के पीछे कुछ पीला पीला सा आया और ठहर गया। झाड़ी में टहनियों और डालों के फन्से थे। उस पीले पीले से आकार के ऊपर। शर्मा जी को जान पड़ा जैसे कोई लम्बे सींगों वाला चीतल हो।

'धांय' शर्मा जी ने लक्ष्य बांध कर बन्दूक़ चलाई। उन्होंने चीतल के सिर का अनुमान करके गोली छोड़ी थी।

'ओ मताई मर गये!' चीतल के आकार की तरफ़ से शब्द आये।

हम दोनों के काटो तो खून नहीं। शर्मा जी तो पसीने में तर हो गये। जान पड़ता था कि कोई हाँके वाला मारा गया। दौड़कर उसके पास पहुँचे। देखा तो हाँके वालों में से एक मन्टोला नाम का खड़ा है—सही और साबित। हम लोगों की दम में दम आई।

मैंने पूछा, 'कहीं लगी तो नहीं मन्टोले ?'

मन्टोला शिकारी था, बहुत हँसमुख और बड़ा मनोरंजक साथी।

बोला, 'बारन में छू कें निकर गई, राम धई। काये पंडित जू, कब की कसर निकार रये ते ?'

पंडित जी बिचारे क्या कहते ? बड़ी बात हुई कि उन्होंने गोली चलाई थी, यदि छर्रा चलाते तो अवश्य उसको एक न एक लग जाता। यह मन्टोला एक छोटे से जीवन चरित्र का अधिकारी है।

बिलकुल अपढ़। आयु लगभग ३० साल की। बेतवा की मछली, जंगल की शिकार और खेतों की बची खुची उपज से अपनी और अपने कुटुम्ब की गुजर करने वाला। कठोर से कठोर परस्थिति में भी उसके चेहरे पर उदासी या शिकन नहीं देखी। जंगलों में वह मेरे साथ बहुत दिनों रहा। मैंने उसको बहुत नज़दीक से देखा है।

मन्टोला एक दिन तेज़ बुख़ार में चारपाई से लगा पड़ा था। मैं उसको देखने के लिये गया।

मैंने पूछा, 'मन्टोले, क्या हाल है भाई ?'

उस तेज़ बुखार में भी हँसकर उसने उत्तर दिया, 'जवानी चढ़ी है बाबू साब, जवानी।' उसके प्रति मेरे मन में श्रद्धा उमड़ी।

मैंने कहा, 'मन्टोले, इतनी पीड़ा मे भी तुम हँस सकते हो!'

वह बोला, 'सो तो बाबू साब, मैं मरतन मरतन हँसत रहों।'

और वह सचमुच मरते मरते तक हँसी को पकड़े रहा। वह अस्पतालों से दूर रहता था। उसके गांव में दवादारू का कोई साधन न था। एक बार जब मैं उसके घर गया उसने चीतल खाने की इच्छा प्रकट की।

'मरवे के पैलें एक बेर मोये चीतरा खुवा देओ।'

मैने निश्चय किया। नदी के एक घाट पर गड्ढा बनाकर सन्ध्या के पहले ही जा बैठा। रात भर जागता रहा। सवेरे के समय चीतल गड्ढे के पास से निकला। मारना बिलकुल सहज था। मैं उसे मन्टोले को भेंट कर आया। फिर वह मुझको नहीं मिला।

चीतल के विषय में कुछ शिकारियों का एक सिद्धान्त है–वे ३६ या ३४ इंच से कम सींग वाले चीतलों को नहीं मारते, परन्तु जिन किसानों की हरी भरी खेती का चीतलों के झुण्ड विनाश करते हैं उनको सींगों के नाप से बिलकुल मतलब नहीं रहता। वे तो बिना किसी भेद के चीतल मात्र के शत्रु हैं।

सात—

चीतलों के बाद मुझको पहला तेंदुआ सहज ही मिल गया। विन्ध्यखण्ड में जिसको तेंदुआ कहते हैं उसकी छोटी छरेरी जाति को कहीं कहीं चीता का नाम दिया गया है। हिमालय में शायद इसी को बाघ कहते हैं।

तेंदुये की ख़बर पाकर मैं एक शनिवार को झाँसी से २४ मील दूर पांडोरी नामक गाँव में पहुँचा। पांडोरी से तेंदुये का स्थान लगभग दो मील दूर था। बेतहाशा जल्दी करके सात बजे शाम तक उस स्थान पर एक परिचित के साथ पहुँच गया। कांटों का एक गड्ढा बनवाया, और बकरा बांधकर बैठ गया।

तेंदुआ दबे पैर आया। मेरे साथी बोले, 'तेंदुआ आ गया।' तेंदुआ मूर्ख नहीं था। मेरे साथी के शब्दों के साथ ही कूद कर चल दिया। हम लोग बुद्धू बने रह गये।

फिर मैं एक योजना बनाकर दूसरे दिन दुपहरी में बैठा।

जहाँ तेंदुआ की चुल थी, वहाँ टौरियां थीं। टौरियों की तिकोन पर एक मैदान था। मैदान से कुछ हटकर एक गड़रिया अपनी भेड़ बकरी चरा रहा था। मैंने गड़रिये को अपनी योजना सुनाई। गड़रिये को हफ्ते में कम से कम एक बकरी भेंट करनी पड़ती थी। वह मेरी योजना का हर्ष के साथ साझीदार बन गया। योजना के अनुसार काम हुआ।

गड़रिया तेंदुये की चुल के नीचे वाले मैदान में अपनी भेड़ बकरियों को चराते चराते ले आया। मैंने एक खड़ी चट्टान के नीचे खूंटी गड़वाई। चट्टान के ऊपर और इर्द-गिर्द काफ़ी

आड़ थी। सामने खुला हुआ था। मैंने वहाँ एक छेददार ओट बना ली और मैं इस ओट वाली चट्टान पर जाकर बैठ गया। गड़रिया भेड़ बकरियों को चराते चराते एक बकरे को खूँटी से बांध कर बाक़ी को दूर हटा ले गया। गड़रिया ओझल हुआ था कि खूंटी से बंधा बकरा मिमियाया। बकरे का पैर रस्सी से बंधा था। वह भागने के लिये उछल रहा था और में में का शोर कर रहा था। मेरा कलेजा धकधका रहा था। तेंदुआ चुल के बाहर आया। उस समय घड़ी में ठीक बारह बजे थे। जाड़ों के दिन थे। धूप कड़ी न थी। मैंने बन्दूक़ संभाली।

तेंदुआ तपाक के साथ बकरे पर आया। जंगली तेंदुये को उस दिन मैंने पहली बार देखा था। पीली मटमैली भूमि पर गहरे काले बड़े और छोटे धब्बे। बड़ी बड़ी मूछें, चौड़े पन्जे और बहुत ही लचीली देह। तेंदुये को देखते ही बकरे ने सिर नीचा कर लिया। मिमियाना और उछलकूद सब बन्द।

तेंदुआ बकरे पर चढ़ गया। वह छलाँग भर कर उसे जीवित ही उठा ले जाना चाहता था, परन्तु खूँटी और रस्सी मज़बूत थी। मेरे पास उस समय ·२७५ बोर राइफिल थी। मैंने उसके अगले कन्धे का निशाना साधा, परन्तु उसकी लचीली देह गति के कारण चंचल थी, इसलिये निशाना जोड़ने में दो चार क्षण लग गये। मेरी बग़ल में नीचे हट कर एक शिकारी बैठा था। मुझको विलम्ब करते देखकर उसकी आंख में क्षोभ आ गया। उसने एक क्षुब्ध संकेत किया। मानो कह रहा हो, 'क्या कर रहे हो? क्यों देर लगा रहे हो?'

मैंने तुरन्त लिबलिबी दबाई । धड़ाके के साथ ही तेंदुआ सिमटा और बिजली की कोंध की तेज़ी के साथ अपनी चुल में चला गया । मेरा साथी शिकारी चट्टान से उतर कर बकरे के पास गया । बकरा बिलकुल बच गया था ।

मेरे साथी ने कहा, 'गोली चूक गई ।' मुझको विश्वास था कि नहीं चूकी, परन्तु मैंने कहा, 'शायद चूक गई हो ।'

इसके बाद उस स्थल पर गड़रिया भी दौड़ता हुआ आया । उसको अपने बकरे की चिन्ता थी, जब उसने देखा बकरा सही सलामत है, तब उसने चैन की सांस ली; तेंदुआ मरा हो या न मरा हो, बकरा तो बच गया ।

मैं भी अपने आसन से उतरा ।

मैंने ठौर को टटोला । एक बूंद रक्त की दिखलाई पड़ी । साथी से कहा,

'तेंदुये पर गोली पड़ गई है ।'

चुल की ओर ज़रा और आगे बढ़े । खून का फ़ब्बारा सा लगा चला गया था । परन्तु तेंदुआ चुल में घुस गया था । घायल तेंदुआ बड़ी खतरनाक चीज़ है । गांव के कुछ लोग आ गये और वे चुल में घुस पड़ने की चाह प्रकट करने लगे । मैंने रोक दिया ।

दो घण्टे के बाद एक लड़का चुल में घुस गया । तेंदुआ मर चुका था, परन्तु उसके स्थान तक पहुँचने के लिये हिम्मत चाहिये थी । वह उस लड़के में काफ़ी थी । लड़का तेंदुये को चुल के बाहर घसीट लाया ।

गोली कन्धे के जोड़ से ज़रा नीचे पड़ी थी, नहीं तो तेंदुआ ठौर पर न जा पाता। खाल छिलवाने पर उसके शरीर का निरीक्षण किया। जान पड़ता था जैसे लोहे के तारों से गसा हुआ हो।

तेंदुआ बड़ा बहादुर, चालाक तेज़ और कस वाला जानवर होता है। शेर की अपेक्षा कहीं अधिक फुर्तीला और हिंसी।

इसी स्थान पर कुछ महीने बाद मैं फिर आया। अंधेरी रात में उसी खूटी वाले स्थान पर खूंटी ठुकवा कर बकरा बंधवाया। बकरा बांधने वाले ने उसकी गर्दन में रस्सी बांधी। मैंने मना किया। रस्सी किसी एक अगली टांग में बांधो जाती है। गर्दन की रस्सी तो यों ही बकरे की जान उसी के झटकों से ले लेगी।

रात में, उन दिनों, मुझको राइफिल चलाने का अभ्यास न था। दुनाली लाया था। दुनाली में कार्तूस डाल कर घोड़े चढ़ा लिये। थोड़ी देर बन्दूक़ को हाथों में साधे रहा। भोजन कुछ अधिक कर आया था, इसलिये सांस भर रही थी। बन्दूक़ को जांघों पर रख लिया।

बन्दूक को जांघों पर रक्खा था कि तेंदुआ तड़ाक से आया। बकरे पर झपटा। मैंने बन्दूक़ उठाई, परन्तु सीधी न कर पाई थी कि तेंदुये ने एक झटके में रस्सी को तोड़ दिया और पलक मारते बकरे को उठा ले गया। बन्दूक़ चलाने की नौबत ही न आ पाई। मैं लज्जा में डूब कर रह गया। अछताता-पछताता उस ठौर से नीचे उतरा।

मेरा दोष कम था, उस रस्सी का दोष ज़्यादा। परन्तु, मैने सारी ज़िम्मेदारी रस्सी की कमज़ोरी और बकरे को बांधने वाले के अविवेक पर डाली। जब गाँव में पहुँचा तब मैने अपने बचाव में यही दलील पेश की। गाँव वालों को लोग बहुत सीधा समझते हैं। मेरी कल्पना कुछ उल्टी है। मेरी दलील उनके मन में बिलकुल घर नहीं कर रही थी। वे लोग शरारत के साथ व्यङ्ग करने लगे।

'हां बाबू साहब तेंदुआ ज़रा बहुत ज़्यादा फुर्तीला जानवर होता है।'

'बहुत से शिकारियों को उससे डर लग जाता है। हाथ कुन्द हो जाता है, बन्दूक़ नहीं चल पाती।'

'अरे साहब, होता ही रहता है। गड़रिये के बहुत से बकरे तेंदुआ यों भी पकड़ ले जाता है। एक और न सही।

परन्तु सबसे ज़्यादा चुस्त व्यङ्ग एक बहुत सीधे दिखने वाले का था। उसने एक कहानी ही कह डाली।

बोला, 'कुछ दिन हुये एक अंग्रेज़ जण्ट तेंदुये का शिकार खेलने आये। कांटों का एक छोटा सा परकोटा बनाकर उसके भीतर बैठ गये। चपरासी को भी साथ बिठला लिया। बकरा उस परकोटे के बाहर थोड़ी ही दूर खूंटी से बंधा था, जितनी दूर आप बधवा कर बैठे थे। तीन तेंदुये एक साथ आ गये। साहब ने बन्दूक़ छोड़कर अपनी पतलून संभाली। तेंदुये मज़े में बकरे को मार कर वहीं खाकर डकार लेते चले गये। साहब ने पतलून सभाली। बन्दूक़ चपरासी के कन्धे पर रक्खी और डेरे पर चल दिये। डेरे पर पहुँच कर चपरासी से बोले,–

कांटों की ऐसी बुरी आड़ सामने आ गई थी कि ठीक ठीक दिखलाई ही नहीं पड़ता था। चपरासी नासमझ था। उसने कहा—साहब आप तो असल में डर गये। जंट ने बिचारे चपरासी को ठोक डाला। बाबू साहब, बड़े आदमियों की बात कौन कहे।'

मुझको हँसी आ गई। उन लोगों ने क़हक़हे लगाये। उनकी कहानी और क़हक़हे का निशाना मैं ही था। रस्सी की कमज़ोरी वाली बात उनके मन में ज़रा भी जगह न पा सकी। मैं उनसे कह भी क्या सकता था? परन्तु उस दिन की चूक हृदय में छुरी की तरह चुभ गई।

शीघ्र ही कुछ दिनों बाद मैं एक छुट्टी में उसी गांव में गया। तेंदुये के उत्पात का समाचार मुझको झाँसी में मिलता रहता था। अब की बार मैं निश्चय करके चला था—गाँव वालों को ठठोली करने का अवसर न दूँगा। प्रबल रस्सी और गहरे गड़े हुये मज़बूत खूंटे से बकरे को बंधवाऊँगा। करामत साथ था।

हम दोनों पहाड़ी के नीचे नीचे गांव की ओर रास्ते रास्ते चले जा रहे थे। हमारे आगे आगे सौ डेढ़ सौ डग के अन्तर पर गांव के ढोर अपनी सारों को लौट रहे थे। सूर्यास्त नहीं हुआ था।

रास्ते के ठीक ऊपर एक चौड़ी-चकली चट्टान पर जो रास्ते के तल से लगभग पन्द्रह फीट ऊँची थी, मैंने कुछ गोलमटोलसा देखा। मैं दबे पैर धीरे धीरे बढ़ा। सन्देह की निवृत्ति हो गई। वह गोलमटोल पदार्थ तेंदुये के सिवाय और

कुछ न था। जाते हुये ढोरों को ताक रहा था। सोचता होगा एकाध पिछड़ जाय तो दे मारूँ। जब मैं उसके बिलकुल निकट पहुँच गया, तब उसने मुझको देखा। वह दुबक गया। पीछे न खिसक पाया। दुनाली में उस समय हिरन मार छर्रे के कार्तूस थे। कार्तूस बदलने का मौक़ा नहीं था। मैंने तुरन्त एक नाल उस पर खाली करदी। तेंदुआ छर्रे के धक्के से पीछे उचटा और अदृश्य हो गया। मैंने इतने पास से बन्दूक़ चलाई थी कि यदि तेंदुआ ज़रा सी उचाट मार कर मेरे ऊपर आ कूदता तो कुछ पलों में ही मेरा ढेर हो जाता। परन्तु करारी चोट खाकर भी तेंदुआ पीछे कैसे चला गया ?

मैं इसी विचार में डूबता उतराता गाँव में आया। गांव वाले मेरे ऊपर बड़ा स्नेह करते थे। मैंने उनको सुनाया। बन्दूक़ का शब्द उन लोगों ने सुन ही लिया था। जब मैंने घटना का ब्योरा सुनाया तब वे तो नहीं हँसे, पर मैं हँसता रहा।

मैने कहा, 'शायद चूक गई हो।'

उन लोगों ने प्रतिवाद किया। इतने में सूर्यास्त हो गया और रात आ गई। रात को और अधिक कुछ नहीं हो सकता था। मैं वहीं बस गया।

सवेरा होते ही तेंदुये की ढूँढ़ खोज हुई। जिस स्थान से मैंने बन्दूक़ चलाई थी उसके बग़ल में एक पुखरिया थी। उसमें पानी था। पानी के पास ही खून का बाता लगा हुआ था। हम सबको विश्वास हो गया कि तेंदुआ घायल हो गया है, परन्तु उसके साथ ही इसमें भी सन्देह न था कि हिरनमार

छर्रे की मार खाकर भी उसमें काफ़ी बल बना रहा और यदि उसको धुन बँध जाती तो घायल होते ही वह मेरे ऊपर टूटता, और, उसका जो फल होता उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

करामत और मैं चुल के भीतर घुसे—बन्दूकें ताने हुये। वहां खून ही खून पड़ा था। परन्तु तेंदुआ वहां न था। चुल के बाहर आकर हम लोगों ने सावधानी के साथ तेंदुये की खोज पहाड़ी के ऊपर की। जहां पर मैंने उसके ऊपर बन्दूक़ चलाई थी, वहां से कुछ गज़ के फ़ासले पर तेंदुआ मरा हुआ पड़ा मिला।

तेंदुआ इतना गांठ गठीला और प्रबल पुट्ठों वाला जानवर होता है कि जब तक 'हिरनमार' दानें गर्दन, सिर या कन्धे के जोड़ पर न पड़ें वह शीघ्र नहीं मर सकता, और ऐसी हालत में उसका घायल पड़ा रहना ढोरों और मनुष्यों के लिये समान संकटजनक है।

तेंदुये के स्वभाव की जानकारी न रखने के कारण मैं कई बार संकट में पड़ा, परन्तु मुझे मखौल भी काफ़ी मिला।

एक बार कुछ मित्रों के साथ सारौल गया। सारौल झांसी से लगभग २२ मील उत्तरपूर्व में है। ऊँची पहाड़ियां हैं। तेदुओं और लकड़भग्गों के रहने के लिये उनमें काफ़ी पोलें हैं। थोड़ी दूर पर बीजोर-बाघाट गांव हैं। बाघाट महाभारत का वाकाट है जैसा कि स्व० काशीप्रसाद जी जायसवाल ने तय किया है। बाघाट में कई गुफा चित्र (Cave Paintings) हैं जिनकी आयु लगभग पांच हजार वर्ष कूती जा सकती है।

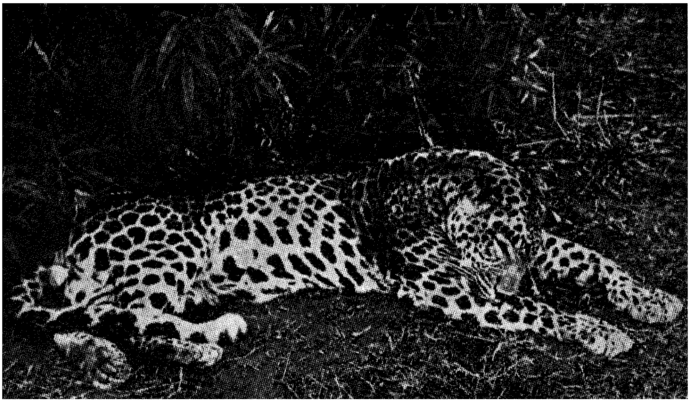

तेंदुआ

सारौल में भी कुछ हैं और एक के ऊपर अनेक रक्खे हुये बड़े-बड़े शिलाखंड भी। पहले तो मैं इनको ज्वालामुखियों के प्राचीन उपद्रवों की क्रिया समझ कर सन्तोष कर लेता था, परन्तु अब मेरा ख्याल है कि ये शिलाखण्ड आदिम मनुष्यों ने अपने किसी महोत्सव के स्मारक में रक्खे हैं, अथवा अपने बड़े लोगों के शवों को इनके नीचे गाड़ा है।

सारौल के पूर्व में पहाड़ियों से घिरा एक तालाब है। एक ओर उस पर चन्देली बन्ध है। तालाब बड़ा तो नहीं है, पर बहुत ही सुहावना है। जेठ के महीने में यह बिलकुल सूख जाता है। इसमें वहां के कुछ लोग अस्थायी कुयें खोद कर गर्मियों में भटे भाजी कर लेते हैं।

हम लोग सारौल पहुँचकर इसी तालाब में जा बैठे। साथ में पड़ोस के एक बड़े जिमींदार भी आये थे। खाना वे बांध लाये थे वह बहुत थोड़ा था। इधर हम थे सब के सब पक्के सात !

खाना सारौल में बनने लगा। वहाँ आते ही खबर मिली थी कि पहाड़ियों में ४, ६ तेंदुये हैं और वे रात को सूखे तालाब के उथले खोदे हुये गड्ढों में पानी पीने के लिये आते हैं। इस तरह के गड्ढे तालाब में तीन चार थे। हम सब बटबटा कर इन गड्ढों पर जा बैठे या लेटनी लगा गये। मैं जिमींदार साथी सहित एक गड्ढे पर जा बैठा। गड्ढे से दिन में ढेंकली द्वारा भाजी भटों को पानी दिया गया था। पानी ऊपर के खदरों में भरा था। भटोही वाले ने बतलाया कि तेंदुये आठ बजे रात के लगभग खदरों में पानी पीने आते हैं, भटोही में

लोटते-पलोटते हैं और पर्याप्त मनोरंजन के उपरान्त शिकार की टोह में चल देते हैं—वैसे में यदि कोई हिरन या चीतल आ गया तो उसको समेट-समाट कर चल देते हैं। मैंने सोचा यहाँ तो तेंदुआ भटे--भाजी की ही तरह सुलभ हैं! अपने जिमीदार साथी की सलाह ली। देहात में रहते हुये भी वे तेंदुये के विषय में मुझसे भी बढ़कर अनजान थे। सलाह से तै हुआ कि पानी भरे खदरे से केवल दो तीन हाथ के अन्तर पर बैठ जाना हितकर होगा। आड़-ओट का सवाल आया। वहाँ कुछ टूटे-फूटे पुराने-धुराने घड़े पड़े थे। आड़ ओट और स्वरक्षा के लिए इनको बहुत काफ़ी समझा गया। मैंने अपने और पानी भरे खदरे के बीच में इन टूटे हुये घड़ों का एक लम्बा-सा अटम्बर लगाया और बन्दूक साधकर तेंदुओं के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

मेरी क़िसमत प्रबल थी, इसलिये मेरे साथी को मुझसे भी ज़्यादा भूख लग आई। वे अपनी बन्दूक़ एक तरफ़ रखकर भटों की तलाश में चुपचाप हाथ फेकने लगे!

इतने में सांभर बोला। चीतल कूके और चिड़ियां चहकीं। उस सुनसान स्थान में ये ध्वनियां मोहकता बरसाने लगीं। जेठ का महीना था, परन्तु तालाब में हवा ठंडक को उँड़ेल सा रही थी। रात अन्धेरी थी। तारे धुले हुये से आकाश में चम-चमा रहे थे। ऐसा लगता था कि रात भर चाहे भूखे बैठे रहें, परन्तु रंग में भंग करने वाला कोई पास न आवे। मेरे जिमींदार साथी कुछ और सोच रहे थे—और कुछ कर भी रहे थे। उन्होंने तीन-चार बेंगन तोड़े, कमीज़ की झोली में

उनको कसा और अपने मोर्चे पर जा डटे। बन्दूक़ एक तरफ़ रखली, पर उनकी सारी कारिस्तानी का पता मुझको तब लगा, जब दो तेंदुये मेरे सिर पर आ गये।

तेंदुये पानी पर आये। मेरे और उनके बीच में केवल ढाई तीन हाथ का अन्तर था। मैंने सोचा आज लिखा गया नाम पक्के शिकारियों में। यह नहीं जानता था कि बन्दूक़ के चलते ही वे दोनों सिर पर सवार होते और कच्चे शिकारियों की सूची तक में नाम लिखे जाने की नौबत न आती। मैंने चलाने के लिये बन्दूक़ उठाई थी कि मेरे साथी ने कड़कड़ाहट के साथ भटे चाबने मुराने शुरू कर दिया। तेंदुओं ने सुन लिया। उनकी तेज़ आँखों ने मेरे साथी के डील डौल को भी देख लिया और वे छलांग मार कर भाग गये। मैं बच गया और मेरे साथी पकड़े गये। वे इतनी, मौज और ओज के साथ भटे चबाये चले जा रहे थे कि हँसी के मारे नाकों दम आ गया। थोड़ी देर में खाना भी आ गया।

रात भर मज़े में सोये। पौ फटने के पहले जाग पड़े। हाथ मुंह धोकर बैठे थे कि तड़का हुआ। पहली पौ फटी। सामने पहाड़ी पर आँख गई तो देखा कि एक तेंदुआ बैठा हुआ है।

झटपट उठकर पहाड़ी का चक्कर काट कर ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से तेंदुआ बहुत पास पड़ता था। परन्तु जब तक वहाँ जाकर खड़े हुये, तेंदुआ सामने की दूसरी पहाड़ी पर जा पहुँचा। दोनों पहाड़ियों के बीच में एक सँकरा मार्ग था। पहाड़ी दूर न थी। राइफ़िल की मार में तेंदुआ था।

सूर्योदय हो रहा था। तेंदुआ बाल-रवि की ओर मुँह किये हुये खड़ा था। मैं उसको देखकर मुग्ध हो गया। राइफ़िल कन्धे से जोड़कर नीची कर ली।

तेंदुये ने पूंछ हिलाई, ऊँची की और गर्जना शुरू किया। मुझको उस समय वह गरज बड़ी जादू भरी लगी। गरज पहाड़ियों को गुँजा रही थी और लौट लौटकर कहीं समा रही थी।

मेरे साथी ने धीरे से कहा, 'कैसा आड़ा खड़ा है! पत्थर पर बन्दूक़ साधकर चलाइये खांद नहीं छोड़ेगा। वहीं पड़ा हुआ अभी मिल जायगा।'

परन्तु मैं मुग्ध था। बन्दूक़ न चला सका। कई मिनिट तक तेंदुये के उस व्यापार को देखता रहा। भ्रम हुआ कि यह अपनी बोली में सूर्य को नमस्कार कर रहा है।

तेंदुआ वहां से चल दिया। मेरे सब साथी मुझसे निराश हुये।

दिन भर लू चलती रही, परन्तु मैं, शर्मा जी और करामत के साथ पहाड़ियों में घूमता रहा। एक पहाड़ी की गुफा के सामने तेंदुये के पन्जों के टटके निशान मिले। मैंने बकरा मंगवाया। एक चट्टान पर आड़ बनाकर सन्ध्या के काफ़ी पहले बैठ गया। ऊपर से लू सेंक दे रही थी और नीचे से गरम चट्टान, परन्तु शिकार की धुन में कुछ भी न खला।

सन्ध्या का झुटपुटा होते ही तेंदुआ चुल से बाहर निकला। निकल कर बकरे पर झपटा नहीं, ठमठमा गया। मैंने उसको बकरे पर आने का समय नहीं दिया। छर्रे वाला कारतूस

चलाने की गलती नहीं की, गोली का कार्तूस चलाया। परन्तु जल्दी कर दी। गोली उसके पेट पर पड़ी और पार हो गई। तेंदुआ गिरता पड़ता जंगल की राह पकड़ गया। सवेरे तलाश किया। लगभग पौन मील पर एक नाले में अधखाया मिला।

दूसरे दिन पास के एक गांव में एक तेंदुये की ख़बर मिली। वह घरों मे घुसकर बच्छे बछियों को उठा ले जाता था और गायों तक को मार देता था।

मचान बांध कर बैठा। बकरा खूँटी से बांध लिया। पास के एक खेत में गायें बैठी थीं। तेंदुये के आते ही गायें अपने दुश्मन पर टूट पड़ीं। तेंदुआ उनके झुण्ड के बीच में फँस गया। मचान के पास होते हुये भी बन्दूक़ नहीं चलाई जा सकती थी। शायद किसी गाय को लग जाय। इसलिये मैं रह गया। तेंदुआ भी किसी तरह अपनी जान बचा कर गायों के बीच में से निकल भागा!

तेंदुये के बराबर ढीठ शायद ही कोई और जानवर होता हो।

इस घटना के कई महीने बाद मुझको एक तेंदुये की ख़बर मिली। वह बहुत उपद्रव करने लगा था। और इतना चालाक था कि कई शिकारियों को धोका दे गया। इन शिकारियों ने उसकी चुल के पास मचान बनाकर बकरे बांधे थे। वह उन बकरों पर नहीं आया।

मैंने गांव में ही एक मकान के पीछे बेरी के पेड़ पर मचान बनवाया और सन्ध्या के उपरान्त बकरा बंधवाकर

मचान पर जा बैठा। रात चांदनी थी। तेंदुआ एक पहर रात गये आया। उस समय गांव की चहल पहल मन्द पड़ गई थी।

जैसे ही तेंदूआ बकरे पर आया मैंने बन्दूक़ चलाई। निशाना ख़ाली गया। तेंदुआ भाग गया। मैंने सोचा अब लौट कर नहीं आवेगा। परन्तु सुन रक्खा था कि ढीठ और निडर होता है, शायद लौट पड़े।

चले हुये कार्तूस को नाल से हटाकर उसमें दूसरा कार्तूस डालकर सोच ही रहा था कि बैठूँ या डेरे पर जाकर लम्बी तानूं कि तेंदुआ बकरे पर फिर आ गया! उसने बकरे को छू भी न पाया था कि गोली चल गई—और तेंदुआ समाप्त हो गया।

एक बार मचान पर मैं शर्मा जी के साथ बैठा था। चांदनी धुँधली थी। जब तक चांदनी रही बकरे पर आने वाले तेंदुये को शर्मा जी ने तीन बार निशाना बनाया और तीनों बार गोली चूकी। अँधेरा होने पर तेंदुआ फिर आया। चौथी गोली भी चूक गई। आध घन्टे बाद वह फिर आया! अब की बार शर्मा जी ने उसको खतम कर दिया।

तेदुआ मरे हुये तेंदुये को खा जाता है। एक बार तेंदुआ घायल होकर एक टोर की ओट में जा पड़ा। रात के कारण उसको उस समय न ढूँढ़ पाया। सवेरे जो देखा तो पेट की तरफ़ से खा लिया गया था। पास ही धूल में उसको भक्षण करने वाले तेंदुये के पन्जों के निशान थे।

तेंदुये को बंधे हुये बकरे पर प्रायः सन्देह हो जाता है, यदि बहुत से चरते हुये बकरों में से एक को खूँटी से बाँध लिया जाय तो वह समझता है कि यह बकरा अकस्मात अटक गया या भटक गया है और वह उस पर झपटने में देर नहीं लगाता। मैंने कई बार इस योजना को प्रयुक्त किया है और कभी विफल नहीं हुआ। परन्तु यह साधन सदा सुलभ नहीं होता। प्रायः मचान या हंकाई का सहारा लेना पड़ता है। हकाई में तेंदुये का मारना कई उपकरणों पर निर्भर है। हांके वाले अच्छे हों, जिस लगान पर शिकारी की बैठक हो वह साफ़ स्थान हो, तेंदुआ उछलता कूदता न आ रहा हो और शिकारी का हाथ ज़रा सधा हुआ हो। परन्तु मचान के शिकार में इतनी अड़चनें नहीं हैं। यदि कोई अड़चन है तो यह तेंदुआ आवे और न आवे।

मुझको तो अनेक बार कोरी आंख सवेरा हुआ। परन्तु रात भर जागते हुये, प्रतीक्षा करते हुये, असख्य बड़े बड़े तारों पर आँख फिसलाते हुये, विलक्षण बोलियों को सुनते हुये और अंगड़ाते हुये भी कुछ प्रमोद मिलता ही है। उस शान्त एकान्त में मनके न मालूम किन किन कोनों से क्या क्या विचार और कल्पनायें उठती बैठती हैं।

मचान पर न बैठकर भूमि पर भी बाज़े बाज़े शिकारी बैठते हैं। आड़ ओट अवश्य बना लेनी पड़ती है। इस प्रकार की शिकार में संकट और ओज दोनों ही एक सी मात्रा में मिल सकते हैं।

मैं भी समतल भूमि पर कांटों की आड़ बनाकर कई बार तेंदुये की शिकार के लिये बैठा, परन्तु सफल कभी नहीं हुआ। अनुभव निस्सन्देह विलक्षण प्राप्त हुये।

एक बार एक अच्छी खासी आड़ बनाकर बैठ गया। आड़ के आगे एक पगडंडी थी। पगडंडी से पन्द्रह फ़ीट की दूरी पर बकरा बांध लिया था। आड़ के मध्य में एक छोटा सा छेद बना लिया था जिसमें होकर बकरे को और बकरे पर आने वाले को देखा जा सके।

सन्ध्या के पहले ही जा बैठा। और सूर्यास्त के पहले तेंदुआ आ गया। परन्तु वह बकरे पर नहीं गया। पगडण्डी से मेरी ओट के पास से बिलकुल सटकर निकला। बन्दूक़ नीचे रक्खी हुई थी। उसको उठाने का समय न मिला। तेंदुआ तीन चार फीट के फ़ासले पर से निकला। कुशल हुई कि मेरी ओर से हवा का रुख तेंदुये की ओर न था। रुख उल्टा था। तेंदुआ इतने पास से निकला कि मैं उसकी मूँछों को गिन सकता था। उसकी आँखें प्रचण्ड थीं और जबड़ा नीचे को ज़रा लटका हुआ। धरती पर पन्जा रखने के समय शब्द होता नहीं है, इसलिये जान न पड़ा कि किस दिशा से आया। मैं टकटकी लगा कर बकरे की ओर देखने लगा। कुछ पलों बाद तेंदुआ बकरे के पास गया और बराबरी पर खड़ा हो गया। बकरा सिर नवाये था। बिलकुल गुमसुम। मैंने बन्दूक़ सम्भाली। देखूँ तो पीछे से यकायक एक डकराती हुई गाय आ रही है। शायद वह बकरे को बचाना चाहती थी, परन्तु अपनी रक्षा के लिये सचेत थी। तेंदुआ वहाँ से हट गया। न

तो वह गाय पर झपटा और न बकरे से बोला। तेंदुये के चले जाने पर गाय भी भाग गई। मुझको इस समग्र व्यापार पर विस्मय था। विस्मय में पड़ा था कि बकरे के पास एक लकड़भग्गा आया।

लकड़भग्गे का अगला हिस्सा भारी होता है और पिछला पतला। दुम छोटी। मुँह बहुत बड़े कुत्ते जैसा। इसके शरीर पर धारें होती हैं। शरीर से बहुत दुर्गन्धि निकलती है। यह घोड़ों, गधों और कुत्तों का परम शत्रु है, परन्तु होता अत्यन्त डरपोक है। एक लकड़भग्गा दूसरे लकड़भग्गे को मरी हालत में तो खा ही जाता है, अपने घायल सहवर्गी को भी नहीं छोड़ता। सड़ा-गला मांस, नई पुरानी हड्डियां सब चबा जाता है।

मैं इससे पहले अनेक लकड़भग्गे मार चुका था। इस लकड़भग्गे पर अपना कार्तूस ख़राब नहीं करना चाहता था। परन्तु हटाता तो किस तरह ? आसपास कोई कंकड़ पत्थर भी न था कि फेक कर उसको डरवाता। उधर बकरे की जान ख़तरे में थी। परन्तु उसका बचाने वाला वहीं छिपा था।

वह था तेंदुआ। अपनी घात में बैठा था। रात होने पर बकरे पर आता, पर यह घृणास्पद आगन्तुक—लकड़भग्गा—पहले ही आ गया !

तेंदुये ने वहीं से छिपे छिपे एक हलकी घुड़की दी। घुड़की के सुनते ही लकड़भग्गे के होश कूच कर गये। बेतरह भागा। परन्तु भाग कर भी उसने प्राण न बचा पाये। तेंदुआ उस पर झपटा—वह लकड़भग्गे को उसकी अनधिकार चेष्टा का

दण्ड देना चाहता था। लकड़भग्गा थोड़ी ही दूर भाग पाया था कि तेंदुये ने उसको धर दबोचा।

फिर उन दोनों का जिस भाषा में वाद-विवाद हुआ वह अवर्णनीय है, क्योंकि केवल ध्वन्यात्मक थी।

घबराये हुये लकड़भग्गे की बोली फटे हुये भोंपू जैसी होती है। तेंदुये की मार के मारे वह अपना फटा हुआ भोंपू पूरे ज़ोर के साथ बजा रहा था और तेंदुआ हुंकार भरी हूं हूं से उसका पलेथन बना रहा था। यह सब मेरे स्थान से कुछ डगों पर हो रहा था। मैं अपने कांटों में होकर अत्यन्त उत्सुकता के साथ देख रहा था। सोचता था कि ये दोनों अपने अखाड़े को ज़रा और विस्तृत कर दें तो मेरी ओट की और मेरी भी ख़ैर नहीं। इस पर भी मैंने बन्दूक़ नहीं चलाई। मैं इस युद्ध का अन्तिम परिणाम देखना चाहता था।

अन्तिम परिणाम, जैसा कि अनिवार्य था, वैसा ही हुआ। लकड़भग्गे को तेंदुये ने चीर फाड़कर फेक दिया। पर खाया नहीं। लकड़भग्गे के नाख़ून लम्बे होते हैं, और पन्जा बड़ा। उसके नाख़ून तेंदुये की तरह गद्दी के अगले भाग के भीतर छिपे नहीं रहते। यही कारण है कि जब वह चलता है, पृथिवी पर नाख़ून रगड़ खाते हैं और आवाज़ करते हैं। लोगों को भ्रम होता है कि लकड़भग्गा अपना पिछला धड़ घसीटकर चलता है, इसलिये शब्द होता है।

उस लकड़भग्गे ने तेंदुये को अपने लम्बे नाख़ूनों और बड़ी बड़ी दाढ़ों से घायल कर दिया था, परन्तु बहुत नहीं, क्योंकि युद्ध थोड़ी सी देर तक ही चला था।

तेंदुआ लकड़भग्गे से निबटकर बकरे के लिये एक पीछे वाली झाड़ी में जा छिपा। वह गत युद्ध के परिश्रम के कारण हांफ रहा था और शायद अपने घावों पर जीभ फेर रहा था—दिखलाई तो पड़ नहीं रहा था, केवल शब्द सुनाई पड़ रहा था।

रात गहरी हो गई। बकरा थकथका कर बैठ गया, झाड़ी के पीछे से तेंदुये की हांफ और जीभ फेरने का शब्द काफ़ी देर पहले बन्द हो चुका था। ज़मीन पर बैठने के लिये मेरी गांठ में टाट का केवल एक छोटा सा टुकड़ा था। प्रतीक्षा करते करते अधीर हो गया। सोचा ज़रा खड़े होकर देखूं ओट के बाहर के जगत का क्या हाल है। बकरे के बैठ जाने से विश्वास हो गया था कि तेंदुआ कही दूर चला गया है।

मैं जैसे ही खड़ा हुआ तेंदुये ने झाड़ी के पीछे से छलांग मारी और द्रुतगति से जगल में भाग गया। मैंने उस स्थान पर और अधिक ठहरना व्यर्थ समझा और बकरे को बगल में दाबकर गांव चला आया।

तेंदुये की आंख कान बहुत तेज़ होते हैं। वह मूछों के सहारे भी बहुत सी ढूंढ़ खोज कर लेता है। मचान पर बैठकर कई बार मैंने ज़रा सा शब्द करके अवसर को खो दिया। कभी मचान ज़रा सा चरमरा गया, कभी कमरपेटी थोड़ी सी चिकचिका गई और कभी जेब में पड़ा हुआ कोई काग़ज़ या चमड़े का बटुआ ही तेंदुये के खिसक जाने का कारण बन गया।

मचान पर घंटों चुपचाप बैठे रहना एक बहुत ही कष्ट-साध्य प्रयास है। भरपेट भोजन करके मचान पर बैठना तेंदुये को खो देने का पूर्व-निश्चय तो कर ही देता है और भी कई

दंड देता है। बार बार प्यास लगती है। भर भर कर सांस लेनी पड़ती है और बार बार आसन बदलनी पड़ती है। ऐसी दशा में मचान पर न बैठकर घर की चारपाई पर करवटें बदलना कहीं ज़्यादा अच्छा।

तेंदुआ जंगल में छः सात बजे और गांव में गायरे पर ग्यारह बारह बजे रात तक आ जाता है। यदि उसको आरम्भ में दुबिधा दिखलाई पड़ी तो बाद को आता है, परन्तु आता अवश्य है। उसकी लम्बी प्रतीक्षा शिकारी के धैर्य की कसौटी है।

सन्ध्या होते ही पहले ख़रगोश दिखलाई पड़ते हैं। शिकारी इसको असगुन मानते हैं। असगुन इसलिये कि खरहे के आने की जगह तेंदुये से खाली होनी चाहिये। जहां कोई खुटका होगा वहां खरहा आने ही क्यों चला? परन्तु जंगल में खरहे इतनी अधिक संख्या में होते हैं कि किसी विशेष स्थान में तेंदुआ हो या न हो खरहा तो सूर्यास्त के समय बाहर निकलेगा ही।

मैं जब मचान के ऊपर जा बैठा और बकरा बँधवा लिया, तब आधी घड़ी बाद ही मचान के नीचे और आसपास कई खरहे आये गये। सूर्यास्त होते होते तेंदुआ भी आया।

तेंदुआ आकर बकरे की बगल में खड़ा हो गया। उसने बकरे को सूंघा भी! बन्दूक़ तैयार थी, परन्तु मैंने चलाई नहीं। देखना चाहता था कि तेंदुआ बकरे को सूंघ सांघकर फिर क्या करता है। वह बकरे को सूंघ सांघकर चला गया। मैं मचान पर से लगभग बारह बजे रात को उतर आया।

दूसरे दिन फिर उसी मचान पर जा बैठा। खरहे आये और चले गये। स्यार भी आये। इनका इलाज मेरे पास था—मैंने मचान पर थोड़े से कंकड़ रख छोड़े थे।

तड़ाक से एक कंकड़ मैंने स्यार के ऊपर छोड़ा। उसको लगा। वह भाग गया। निश्चित था कि तेंदुआ उस समय वहां नहीं है। मैं खाली पेट था। हांफ और सांस की कोई चिन्ता न थी। रात भर बैठा रहना पड़ता तो भी न थकता।

गर्मियों के दिन थे। नदी का किनारा। किनारे से लगे हुये भरके और छोटे छोटे नाले। इनमें करोंदी का जंगल था। करोंदी फूलों से लदी हुई थी और वाय उसकी महक से लदी जान पड़ती थी। नदी के पानी के पास चकवा चकवी बोल रहे थे। वे अलग न थे। रात को भी साथ ही रहते हैं। पुराने कवियों के भ्रम ने ही उनको अलग किया है। पानी में मछलियां उछल उछलकर डूब रही थीं। पतोखियां और टिटहरियां बोल बोल जाती थीं। रात बिलकुल अँधेरी थी, परन्तु तारे निकल आये थे और झिलमिला रहे थे। नीले आकाश में टँके हुये से।

थोड़ी देर बाट देखने के बाद मैंने बन्दूक़ के नीचे अपना टॉर्च एक रूमाल से बांधा और बन्दूक़ को जांघ पर रख लिया।

एक बड़ा तारा पूर्व दिशा की भाल पर दमक रहा था। वह पेड़ के झरोखे में से साफ़ दिखलाई पड़ता था। करोंदी की मस्त महक और उस तारे की लुभाने वाली दमक में मुझको

तेंदुये की शिकार की लालसा न रही। मैं एक टक उस अद्भुत तारे को देखने लगा।

इतने में खूँटी से बंधा हुआ बकरा चटका। उसके प्राणों की मुझको चिन्ता हुई। उस अंधेरी रात में मचान के नीचे की भूमि पर बकरा एक हिलता हुआ छपका सा दिखलाई पड़ा।

मैं समझ गया कि बकरे के पास कोई आ रहा है।

एक क्षण उपरान्त ही बकरे वाले छपके पर एक बड़ा और लम्बा छपका ज़ोर के साथ हिलता हुआ दिखलाई पड़ा। साथ ही बकरे की 'में में' सुनाई पड़ी। उसी बड़े छपके की सीध में दुनाली हो गई। टॉर्च का बटन दबाते ही तेज़ प्रकाश हुआ। एक लम्बा चौड़ा तेंदुआ बकरे को दबोचे हुये था।

'धम' से गोली चली। वह तेंदुये को फोड़ कर बकरे को जा लगी। तेंदुआ बकरे को छोड़ कर दूर जा पड़ा और थोड़ी सी हुँकारियां मार कर चुप हो गया। गोली लगने के कारण बकरा भी खतम हो गया। तेंदुये से पहले ही।

कार्तूस में पक्की गोली (Solid Ball) थी। यदि कच्ची गोली (Soft Ball) होती तो वह तेंदुये के भीतर ही रह जाती और बकरा बच जाता। तेंदुये ने बकरे को ऐसा जकड़ लिया था कि मैं कुछ और कर ही नहीं सकता था।

तेंदुआ काफ़ी लम्बा चौड़ा था। परन्तु इससे एक बड़ा शर्मा जी ने मारा था। और, सबसे बड़ा तो वह था जिसको चि: सत्यदेव ने दिन में बैलगाड़ी पर से केवल ८, १० फ़ीट के फ़ासले पर चित्त कर दिया था। गोली खाते ही तेंदुआ उछला, छलांग ज़रा तिरछी पड़ती तो सीधा गाड़ी पर आता।

उस पर तुरन्त दूसरी गोली पड़ी और वह ठण्डा हो गया। नापने पर यह दो इन्च कम आठ फ़ीट लम्बा निकला था। नाप इन जानवरों का पूछ के सिरे से नाक के छोर तक लिया जाता है। इस तेंदुये का रंग और उभार बहुत गहरा था। डीलडौल में छोटे शेर के बराबर जान पड़ता था।

इन जानवरों को मुलायम खाल वाला जानवर कहते हैं। इनके लिये पक्की गोली. उपयुक्त नहीं है। खाल इतनी लोचदार, इतनी लचीली होती है कि कभी कभी पक्की गोली जैसा कि कुछ लोगों का मत है—उस पर से रिपट जाती है। कच्ची गोली, चकत्ता बन जाने वाली (mushrooming) मुलायम, नोकदार गोलियां ही इन जानवरों के लिये ठीक हैं।

तेंदुआ साधारण तौर पर मनुष्य पर हमला नहीं करता, परन्तु दबे पांव चढ़ भी बैठता है। घायल तेंदुआ तो मौत का द्वार ही है। हर साल एक न एक शिकारी घायल तेंदुये की दाढ़ों और नाखूनों का शिकार हो जाता है।

घायल होने के बाद तेंदुये को कई घण्टे तक न खोजना सावधानी का एक नियम सा है, परन्तु परवाह इस नियम की शायद ही कोई शिकारी करता हो। फल भी उसका जो अनिवार्य है वह होता है।

तेंदुआ छप्पर तोड़कर ढोर बकरी वाले घरों में प्रवेश करता है। नाखून अड़ाकर दीवार पर चढ़ता है और छोटे-मोटे जानवर को मुंह में चांपकर ले भागता है। जो कुत्ते इसको रात-रात भर भोंककर चिढ़ाते हैं उनको मिटा देने की यह गांठ सी बांध लेता है और एक न एक रात मिटाकर रहता है।

मैंने अपने फार्म पर खेती की रखवाली के लिये जितने कुत्ते पाले वे ज़्यादा काम न करते थे तो रात को भोंकते अवश्य थे। उसने बारी बारी से सबको समाप्त कर दिया।

परन्तु तेंदुये की मुठभेड़ जब सुअर से होती है तब उसको छठी के दूध की याद आ जाती होगी। किन्तु सुअर हो खीसदार।

खीसदार सुअर के साथ तेंदुये की लड़ाई रात-रात भर होती है। एक तरफ़ से 'हुर्र हुख़' और दूसरी तरफ़ से हुँकार की टंकारें होती हैं। यह लड़ाई दो में से एक की समाप्ति पर निबटती है। कभी कभी तो दोनों ही मर मिटते हैं। सुअर अपनी छुरी जैसी खीसों से तेदुये के चिथड़े उड़ाता है और तेंदुआ अपने पांचों हथियारों से सुअर की बोटियां बिखेरता है।

कभी कभी 'सेही' से भी तेंदुये की थोड़ी देर लड़ाई हो जाती है, परन्तु यह विग्रह अल्पकालीन होता है। सेही के शरीर पर—पिछले भाग पर अधिकतर—लम्बे नुकीले कांटे होते हैं। यह इन कांटों को, आत्मरक्षा में, अपने आक्रमणकारी पर तेज़ी के साथ छोड़ती है। ये कांटे शरीर में ठस जाते हैं।

परन्तु अन्त में तेदुआ सेही को मारकर खा जाता है।

मैंने एक बार एक तेंदुआ मारा। जब खाल छिलवाई तो उसके पट्ठों में सेही के दो काँटे निकले। घाव पुर गया था पर मांसपेशी में वे काँटे ज्यों के त्यों थे।

एक और तेंदुये के शरीर में से सीसे का एक छर्रा निकला था। किसी शिकारी का छर्रा खाकर भी तेंदुये का कुछ न बिगड़ा था!

कुछ लोग इसको शिकारी कुत्तों से घेरकर बर्छे से मारते हैं। परन्तु मार उसको तब पाते हैं जब वह एकाध कुत्ते की चटनी बना डालता है और स्वयं घायल हो जाता है या बहुत थक जाता है। इस प्रकार का शिकार काफ़ी समय लेता है।

एक तरह से और उसको मारा जाता है, परन्तु वह बध है, शिकार नहीं। खिसियाये हुये गांव वाले जिनमें से अनेक ने बन्दूक़ देखी तक नहीं, करें भी और क्या ?

एक गहरा गड्ढा खोदा। उस पर गाड़ी का पहिया नाम मात्र के सहारे से रख दिया। एक ओर, बचाकर, बकरा बांध लिया। तेंदुआ आया, उसने बकरे पर झपट लगाई। बकरा अलग, तेंदुआ गड्ढे में और पहिया जा सटा गड्ढे के ऊपर। फिर जुटे गांव वाले पत्थर और लम्बे नुकीले लठ ले लेकर और किया उसको ठोक पीटकर समाप्त।

तेंदुआ जंगल या अपनी वुल से सांझ के लगभग निकल पड़ता है और प्रातःकाल के ज़रा पहले लौट आता है। ठंड के दिनों में काफ़ी दिन चढ़े तक घमोरी लेता है। गर्मियों की ऋतु में वह शाम को किसी खुली सुरक्षित जगह में लेट जाता है। वहीं से अधमुदी आंखों गुन्ताड़े लगाता रहता है—शिकार की टोहटाप।

तेंदुआ मांदी के साथ असाढ़ और कार्तिक के लगभग रहता है। इनकी लड़ाई भिड़ाई या मेल मिलाप का समाचार इनकी गर्जन-तर्जन देती है। सारा जंगल इनकी गूंजों के मारे उमग सा पड़ता है।

एक बार ऐसी ही एक गर्जन को सुनकर मैं बन्दूक़ लेकर दौड़ा। गर्जन लगभग आध मील दूर से आ रही थी। जब मैं पास पहुँचा तब वह दूर हट गई। झाड़ी घनी थी। रेंगते-रेंगते मैं तेंदुये के पास पहुँच गया। मैंने बन्दूक़ नहीं सोधी कर पाई और उसने देख लिया। वह एक हुँकार के साथ विलीन हो गया। मैं पसीना बहाता हुआ अपने डेरे को लौट आया।

रेंगते-रेंगते तेंदुये के पास पहुँचना समय नष्ट करना है। तेंदुये का कान इतना तेज़ होता है कि कोई भी इस प्रकार आसानी के साथ उसको नहीं दबा सकता। इस रेंगरांग का वह स्वयं प्रचण्ड विशेषज्ञ और पारंगत है। उसकी ही जाति वाला इस तरह उसके पास पहुँच सकता है। मनुष्य के लिये तो बहुत दुष्कर है।

तेंदुये की भिन्न भिन्न बदमाशियों के कारण कुछ लोग अपनी खीझ में उसको 'खजुहा' कहते हैं, कोई कोई नकटा—क्योंकि इसकी नाक बिलकुल चिपटी होती है—और कोई कोई कटना।

जिस समय यह अपनी लोच को फैलाता और समेटता हुआ जंगल में चलता है, उस समय उस पर शान बरस बरस सी जाती है। परन्तु जब उसके हत्यारेपन की याद आती है तब उसके लावण्य या सौन्दर्य के साथ कोई सहानुभूति नहीं रहती।

फिर भी तेंदुये की कोई कोई अदा मन पर एक लकीर छोड़ ही जाती है। जब कभी कभी रात को नींद नहीं आती और मन इधर उधर भटकता है तब कुछ ऐसी स्मृतियां विचलित मन और गहरी नींद को जोड़ने वाली कड़ियां बन जाती हैं।

अंधेरी रात थी, पर मोटर की तेज़ रोशनी थी। ललितपूर से टीकमगढ़ जा रहा था। मार्ग अच्छा न था। मोटर जरा धीरी चाल से जा रही थी। यकायक एक बड़ा तेंदुआ सड़क के एक छोर से दूसरे छोर को निकल गया। बड़े बड़े गुल और चमकती हुई खाल, बड़े बड़े पट्ठे सब लहराते हुये, खिचे हुये से सरपट निकल गये। आंखों के सामने बिजली सी कोंध गई।

दूसरी बार सूर्योदय के पीछे इससे भी बढ़कर अनुभव मिला। गर्मियों के दिन थे। करोंदी के फूल झड़ चुके थे, और कर्धई की पत्तियां भी। जंगलवर्ती एक कुयें के पास वाले गड्ढे में थोड़ा सा पानी भरा हुआ था। पास के गांव वाले लोग दुपहरी में अपने ढोरों को इस कुयें से खींच-खींचकर पानी पिलाते थे। उस गड्ढे में पहले दिन का बचाखुचा पानी था। मैं इस पानी के पास एक बहुत साधारण सी झांक-झंकीली ओट लेकर बैठा था। कल्पना थी कि सुअर आयगा।

पन्द्रह मिनिट बैठा था कि एक घूम पर गद्दी के पड़ने का हलका-सा 'धम' शब्द हुआ। मैंने नहीं समझ पाया। सोचा धूल पर सुअर का पैर पड़ा होगा।

क्षण उपरान्त देखा कि एक लम्बा-चौड़ा तेंदुआ मजे मजे पानी के गड्ढे के पास आ रहा है। मैं अपनी ओट के पीछे दबका, क्योंकि वैसे तेंदुआ दूर से ही मुझको परख लेता। जब वह लगभग बीस-पच्चीस फ़ीट की दूरी पर रह गया किसी सन्देह में तुरन्त ठिठक गया। उसने वायु की ओर नथने पसारे। मैं समझ गया कि इसने बाव ले लिया और अब दो

छलांग मार कर अदृश्य होता है। मैं तुरन्त खड़ा हो गया। तेंदुये ने मुझको अच्छी तरह देख लिया। भागने के लिये उसने एकदम उचाट ली। उधर उसने उचाट ली, इधर बन्दूक़ से हिरनमार छर्रा छूटा। परन्तु लगा उसको एक भी नहीं। दूसरा छूटा, वह भी बिलकुल खाली गया। तेंदुआ भाग गया।

दूसरे दिन मैं फिर उसी स्थान पर और भी जल्दी जा बैठा। जब काफ़ी दिन चढ़े तक कुछ भी न आया तब मैंने पास की एक झाड़ी की राह पकड़ी। मटरगश्त थी—आशा तो कोई थी नहीं।

मैं दबे दबे जा रहा था। एक मोड़ से पल्लवहीन कर्धई के एक झकूटे के पीछे बड़ी गठरी सी दिखलाई पड़ी। सोचा यदि धीरे धीरे बढ़ा तो निकट पहुँचने के पहले ही गठरी तिरोहित हो जायगी—मुझको सन्देह था कि कोई नाखूनी जानवर सिमटा बैठा है, परन्तु निश्चय न था। मैंने डग बढ़ाये।

जल्दी पास पहुँच गया। गठरी भी शीघ्र खुल कर फैली। तेंदुआ सीधा खड़ा हो गया।

यह तेंदुआ कल वाले से भी अधिक दीर्घकाय था। इसके गुल कुछ ढले हुये थे। जब तक मैंने बन्दूक़ चलाई तब तक उसने छलांग भरी। गोली का कोई भी प्रभाव नहीं हुआ। एक पेड़ की डाल से टकरा कर बल खाती हुई चली गई। तेंदुये ने और छलांगें भरीं। मैंने दूसरी छोड़ी। वह भी खाली गई। तेंदुआ चला गया। परन्तु मन पर गहरी छाप छोड़ गया।

एक मित्र ने इस प्रकार के जानवर की शिकार के सम्बन्ध में एक बार लालसा प्रकट की थी, 'जानवर मरे या न मरे, जंगल के सुनसान में एक बार दिखलाई ही पड़ जाय तो उसका स्मरण खोई हुई नींद को बुलवाने का काम किया करेगा।'

परन्तु शेर या तेंदुआ जब मरी हुई हालत में शिकारी को कहीं दिखलाई पड़ता है तो शायद मन में कोई स्थायी लीक नहीं बनती।

इन्हीं मित्र ने आज़मगढ़ ज़िले की एक घटना सुनाई थी। जंगल से शेर भटक कर किसानों के खेत में आ गया। गांव भर के लट्ठों और कुल्हाड़ों ने उसको जा घेरा। वह जंगल से दूर भटक आया था, इसलिये एक खड़े खेत से दूसरे खड़े खेत में जा पहुँचता था। थक गया, भूखा प्यासा रहा ही होगा। गांव वालों ने लाठियों और कुल्हाड़ियों से मार डाला।

उसको देखकर मन में कोई स्थायी कुतूहल न जागा।

झांसी की कचहरी में पुरस्कार पाने के लिये कुछ गांव वाले एक मरे हुये शेर को गाड़ी पर रख कर लाये थे। उसको देखकर मेरे मन में ग्लानि उत्पन्न हुई थी।

सरकस के शेर और तेंदुये कुछ कौतुक दे देते हैं, परन्तु सुनसान एकान्त में चुपचाप आने वाले जानवर मन को जो कुछ दे जाते हैं वह टिकाऊ होता है। परन्तु उसका चरित्र खटकता है।

तेंदुआ रात को तो चोरी करता ही है, दिन में भी डाके डालने से नहीं चूकता। बछियों-बच्छों और गायों को तो वह बहुधा दिन में ही मिटाता है।

जब यह मनुष्य-भक्षी हो जाता है तब तो मनुष्य-भक्षी शेर भी इसके सामने ना कुछ है। इतनी हिम्मत, इतनी फुर्ती, इतनी ढिठाई और इतनी चालाकी शेर में नहीं होती।

तेंदुये से कहीं अधिक भयानक तेंदुनी होती है, ख़ास तौर पर उस समय जब उसके बच्चे दूध पीते हों।

जाड़ों की बात है। बेतवा नदी के बीचों-बीच एक पथरीले और पेड़ वाले टापू में, जिसकी केवल एक ओर धार जाड़ों में रह गई थी, तेंदुनी ने अपनी चुल बनाई, दो बच्चे जनें और वहीं रहने लगी। शिकार में एक अँग्रेज़ का साथ हो गया। उसको तेंदुये की शिकार का अनुभव न था। वह चुल के ठीक ऊपर जा लेटा। मैंने पानी के पास बैठकर खाने की पोटली खोली। अँग्रेज का खाना कई मील दूर पर रह गया था। शीघ्र भोजन प्राप्त करने का उसके पास कोई साधन न था।

मैंने सोचा बिस्कुट डबलरोटी खाने वाले से पूड़ी खाने की बात कहूँ ही क्यों? परन्तु मनुष्यत्व—या हिन्दुस्थानियत—ने प्रेरणा की।

मैंने पूछा, 'पूड़ी खाओगे?'

उसने चाव के साथ स्वीकार किया। वह चट्टान पर से उतर ही रहा था कि लपक कर तेंदुनी आई। वह ऐसी परिस्थिति में था कि बन्दूक़ चला ही नहीं सकता। और, मेरे हाथ पूड़ी साग के हिसाब में उलझे हुये थे। कुशल हुई कि तेदुनी ने ज़्यादा पीछा नहीं किया।

कुछ समय पीछे हम लोग चुल के पास जा टिके। तेंदुनी चुल में नहीं थी—जंगल में निकल गई थी। फिर वह चुल में चली गई। खा-पीकर हम लोगों ने चुल का घेरा डाला। चुल में कई छेद थे। एक छेद से वह बाहर निकल गई थी। सावधानी के साथ बच्चों को निकाल लिया। दो थे। अंग्रेज़ ने दोनों बच्चों को ले लेने की इच्छा प्रकट की। मुझको तो एक भी नहीं रखना था। वह दोनों को ले गया। उसकी इच्छा इन बच्चों को किसी सरकस में दे देने की थी।

तेंदुनी थोड़ी दूर खड़ी खड़ी यह सब देखती रही। परन्तु हम लोग दो से कई गुने हो गये थे। बहुत हल्ला-गुल्ला कर रहे थे। और बन्दूकें तो हाथ में थी हीं। इसलिये तेंदुनी ने आक्रमण नहीं किया। हम लोग यदि बहुसंख्यक न होते तो चुल में से बच्चों को निकालने का प्रयास भी न करते।

तेंदुये की दाढ़ का किया हुआ ज़ख़्म तो अच्छा भी हो जाता है, परन्तु उसके नाख़ून का किया हुआ बहुत विषैला होता है। उसके नाखूनों की मोड़ में मारे हुये जानवर के मांस के परमाणु चिपटे रहते हैं। वे सड़ते हैं और उनकी सड़ांद में भयंकर विष वाले कृम कीट उत्पन्न हो जाते हैं। जब इनका प्रवेश मनुष्य के शरीर में हो जाता है, तब वे सारे शरीर को विषाक्त कर देते हैं।

नाख़ूनी जानवरों के किये हुये घावों को तुरन्त स्प्रिट से भिगो देना चाहिये। यदि उनको आग से दाग दिया जाय तो भी अच्छा है।

कुछ लोगों की कल्पना है कि तेंदुये की मूंछ में विष होता है, यदि कोई भोजन में उसको खा जाय तो पेट के अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मैं समझता हूँ कि यह सही नहीं है। उसकी मूँछ या खाल के बालों में विष होता तो उनको ज़रूर रोग-ग्रस्त देखता जो उसका मांस खा जाने से नहीं हिचकते। मैंने एक जाति विशेष को उसका मांस खाते देखा है। यह भी देखा है कि बरसों तक उसके खाने वालों को कोई विशेष रोग नहीं हुआ। मांस के साथ उन खाने वालों ने बालवाल भी नहीं छोड़े थे।

तेंदुये की चर्बी का उपयोग जोड़ों के दर्द पर करते देखा है। सुना है, पर मुझको मालूम नहीं कि, वह इस प्रकार की पीड़ा के लिये लाभदायक है। उसकी हंसुली की हड्डी तो बहुत से अन्ध विश्वासों की कहानी है।

चीते और तेंदुये के अन्तर पर प्रायः वाद-विवाद चला करता है। मेरी समझ में वाद-विवाद का मूल कारण चीते का तेंदुये से कुछ बातों में सादृश्य है। शरीर के चित्ते, कानों का छोटापन, सिर की बनावट, पूंछ की लम्बाई चीते को तेंदुये के वर्ग का कहने के लिये प्रलोभन देती है, परन्तु दो बातों में चीता तेंदुआ से बिलकुल भिन्न है; चीता पालतू किया जा सकता है, तेंदुआ पालतू करके पिंजड़े में तो रक्खा जा सकता है, परन्तु वह भरोसे के साथ स्वतन्त्र कदापि नहीं छोड़ा जा सकता; दूसरे, तेंदुये के नाख़ून उसके पन्जे की गद्दी में बिलकुल छिपे रहते हैं, परन्तु चीते के नाख़ून पन्जे की गद्दी के बाहर ही रहते हैं, ठीक कुत्ते को तरह। चीता तेंदुये से काफ़ी छोटा

श्रौर कुत्ते से काफ़ी बड़ा होता है। चीता कुत्ते की अपेक्षा अधिक बड़ी छलांगें लेने वाला और तेंदुये की अपेक्षा कहीं अधिक तेज़ दौड़ने वाला होता है। कोई कोई राजा चीते को हिरन की शिकार के लिये पालते हैं। यह हिरन को पकड़ कर अपने मालिक के सिपुर्द कर देता है। परन्तु यदि यही क्रिया पालतू तेंदुये से कराई जा सकती होती, तो वह हिरन को खुद ही खाता और यदि मालिक उसके भोजन में कोई बखेड़ा उपस्थित करता तो वह मालिक पर तुरन्त चढ़ बैठता।

आठ—

खेती को नुक़सान पहुंचाने वाले जानवरों में सुग्रर, चीतल ग्रौर हिरन से, कहीं ग्रागे है। मनुष्यों के शरीर को चीरने फाड़ने में वह तेंदुये से कम नहीं है। सुग्रर की खीसों से मारे जाने वालों की संख्या तेंदुये की दाढ़ों ग्रौर नाखूनों से मारे जाने वालों की ग्रपेक्षा कहीं ग्रधिक होती है। यह प्रत्येक वर्ष के ग्रौसत की कहानी है।

सुग्ररों की संख्या इतनी शीघ्रता के साथ बढ़ती है कि उसकी बाढ़ में किसी बड़े षड़यन्त्र का हाथ सा दिखलाई पड़ता है।

दो तीन वर्षों में ही एक जोड़ के कम से कम पचास जोड़ हो जाने की संभावना रहती है।

यह जानवर बहुत दृढ़, बड़ा कष्टसहिष्णु, बिकट बहुभोजी ग्रौर बहुत मार पी जाने वाला होता है। बहादुर इतना कि इसके मुक़ाबिले में शेर भी उतना नहीं होता। खीसें इसका हथियार होती हैं, ग्रौर बल का कोष इसकी गर्दन ग्रौर कन्धे। ग्रौर, इसका सिर तो मानो पत्थर का एक ढोंका ही होता है। जिसने एक बार इस खीस या सिर की टक्टर खाई वह उसको कभी नहीं भूल सका—ग्रर्थात् यदि उस टक्कर के कारण मर न गया तो।

उतरती बरसात के दिन थे। सूर्यास्त होने में विलम्ब था। बदली छाई हुई थी ग्रौर ठंडी हवा चल रही थी। मैं ग्रपने एक मित्र के साथ जंगल की ग्रोर चल दिया। जंगल में घुसा

नहीं था कि दो छोकरे दो कुत्ते लिये हुये मिल गये। कुत्ते आगे आगे दौड़ रहे थे और कलोलों पर थे। मैंने उन छोकरों को कुत्ते पकड़कर लौटने के लिये कहा। उन्होंने प्रयत्न करके एक कुत्ता पकड़ पाया, दूसरा जंगल का रुख़ पकड़ गया।

हम लोग उस कुत्ते को पकड़ने की चिन्ता में जंगल के सिरे पर पहुँच गये। झाड़ीं शुरू हो गई थी, परन्तु घनी न थी।

निदान वह कुत्ता एक छोटी सी झाड़ी के पास जा ठिठका। हम लोग उसके पास पहुँच गये। वह झाड़ी मेरे सामने थी; दाईं ओर ४, ५ क़दम के अन्तर पर मेरे मित्र दुनाली बन्दूक़ लिये खड़े हो गये। एक कुत्ते को एक छोकरा साफ़े के छोर से बांधे हुये बाईं ओर चार पांच क़दम के फ़ासले पर और दूसरा उसके बराबर खड़ा हो गया। मेरे मित्र दाईं ओर से हटकर ज़रा और सामने आये।

उस दूसरे आवारा कुत्ते ने झाड़ी में मुंह डाला। सूंघा, और फूंफां की। मैंने समझा झाड़ी में ख़रगोश होगा।

परन्तु उस झाड़ी में से कूदकर निकला एक मझोला सुअर! वह सीधा मेरे ऊपर आया।

मैं ३० बोर राइफ़िल लिये था। भरी हुई थी, परन्तु नाल पर ताला पड़ा था। मेरे मित्र बन्दूक़ नहीं चला सकते थे। चलाने पर गोली या तो मुझ पर पड़ती या उन दो छोकरों में से एक पर। मैं भी नहीं चला सकता था। मेरी गोली या तो उन मित्र पर पड़ती या किसी छोकरे पर।

उन दोनों छोकरों के मुंह से निकला, 'ओ मताई खा लओ!' और वे बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के पौदों के बल

धम्म से गिरे। उसी क्षण सुअर मेरे ऊपर आया। क्षण के एक खंड में मैं समझ गया कि आज हड्डी पसली टूटी।

और तो कुछ कर नहीं सकता था—मैंने सुअर के आक्रमण को बन्दूक़ की नाल पर झेला। कन्धों और हाथों को काफ़ी कड़ा करके मैंने सुअर के आक्रमण को झेला था, परन्तु उसने मेरी दाहिनी टांग को दो झिट्टे दे ही तो दिये। ये झिट्टे घुटने के नीचे पड़े थे।

सुअर अपना यह थोड़ा सा परिचय देकर भागा और मैंने अपना परिचय देने के लिये उसका पीछा किया; परन्तु मैं १०, १५ डग से आगे न जा सका। पैर भारी हो गया और जूतों में ख़ून भर गया। खिसिया कर रह जाना पड़ा। पैर की हड्डी टूटने से तो बच गई, परन्तु मैं घायल इतना हो गया था कि लंगड़ाते लंगड़ाते चलना भी दुस्सह हो गया।

इस स्थान से बेतवा का किनारा लगभग एक मील था। हम लोगों ने उस रात नदी के एक बीहड़ घाट पर ठहरने की सोची थी। पैर में गर्मी थी, इसलिये घाट पर पहुँचने में कोई बाधा नहीं जान पड़ी। घाट पर पहुँचे तो देखा कि वहां बिस्तर विस्तर कुछ नहीं। जिस गांव में डेरा डाला था वह इस घाट से लगभग ढाई मील था। परन्तु ऊपर की ओर हम लोगों ने, बेतवा की ढी में, एक ठिया और बना रक्खा था। सोचा शायद बिस्तर वहां रख दिये गये होंगे। अभी अंधेरा नहीं हुआ था, इसलिये हम लोग उस ठिये की ओर चल पड़े। वह इस घाट से डेढ़ मील की दूरी पर था। पैर लंगड़ाने लगा था, परन्तु मन को आशा में उलझाये हुये वहाँ पहुँच गया।

देखें तो बिस्तर वहां भी नहीं। घाट पर बिस्तर रखने के लिये जो शिकारी नियुक्त था वह या तो भूल गया था या भ्रम में था—शायद हम लोग गांव को लौट आवें, क्योंकि सुअर की टक्कर का समाचर गांव में पहुँच गया था।

मेरा पैर सूज गया था और घाव में काफ़ी पीड़ा थी। घाट पर बिना बिस्तरों के ठहर नहीं सकते थे। मेरे मित्र चिन्तित थे। बोले, 'आप गड्ढे में बैठिये, मैं गांव से बिस्तर और भोजन लाता हूँ।'

गांव इस ठिए—गड्ढे—से दो मील था।

मैंने कहा, 'न। मैं भी चलता हूँ। घाव को गरम पानी से धोकर प्याज का सेंक करेंगे।'

हम दोनों गांव की ओर चल दिये। मैं कभी मित्र का और कभी बन्दूक़ का सहारा लेता हुआ गांव में ९, १० बजे तक पहुँच गया। रात को घी में भूने हुये प्याज़ का सेंक किया। कुछ दिनों में घाव अच्छा हो गया। उसमें पीव नहीं पड़ी। परन्तु उसके थोड़े से निशान अब भी मौजूद हैं। सुअर की चोट का घाव विषैला नहीं होता है, गांव वालों ने यह बात मुझको उसी रात बतलाई थी। परन्तु शिकार में ऐसी साधारण चोटों का लग जाना एक साधारण बात है।

सुअर की शिकार के लोभ में एक बार ज़रा कड़ी चोट खाई थी।

अगोट पर बैठे बैठे जब थक गया, गांव को लौटा। साथ में गांव का पथ-प्रदर्शक था। रात काली अंधेरी थी और मार्ग जंगली पगडंडी का।

पथ-प्रदर्शक ज़रा आगे निकल गया। पगडण्डी एक जगह बन्द सी जान पड़ी। मैं समझा आगे दूबा है, और वह उसी में लुप्त हो गई है। पर वह निकला एक भरका। लगभग चौदह फ़ीट गहरा। मैं धड़ाम से उसमें गिरा। बन्दूक़ हाथ में लिये था। इसके बल जा सधा, नहीं तो हाथ तो टूट ही जाता— दाहिना हाथ जिससे लिखना सीखा था।

हाथ तो बच गया, परन्तु जबड़े का धक्का कान पर लगा। वह एक कष्टदायक फोड़े के रूप में परिवर्तित हो गया। सात महीने के लिये काम और शिकार, दोनों, छोड़ने पड़े। इसमें से दो महीने चीर-फाड़ के सिलसिले में लखनऊ में बिताये।

जब स्वस्थ हो गया, तब सुअर फिर ध्यान में आया!

सुअर का शिकार जितना 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' है उतना ही मनोरंजन और सनसनी देने वाला भी होता है। उसके शिकार का संकट ही कदाचित मन को बढ़ावा देता है।

मैंने सुअर के सताये हुये बहुत से लोगों को देखा है—किसी की जांघ फाड़ डाली गई थी, किसी का हाथ तोड़ दिया गया था और किसी की आंतें बाहर निकाल दी गई थीं। कई तो मार ही डाले गये थे।

बिचारा मन्टोला तो फटी जांघों का इलाज कराने के लिये तीन महीने अस्पताल में रहा था।

गांव के लोग सुअर की सीध और उसके संकट को जानते हैं, इसलिये उससे बहुत सावधान रहते हैं। ज्वार के खेत में जब अकेला सुअर आता है तब वह रखवाले की ललकार का

उत्तर ढिठाई के साथ उसके पास आकर देता है। रखवाला उसके ऊपर जलते हुये कण्डे और सुलगते हुये लक्कड़ फेककर भागते भागते जान छुटाता है।

जब सनसनाती हुई दुपहरी में मैं एक ग्रामीण के साथ पहाड़ पर चढ़ते चढ़ते एक सुअर को पड़ा पा गया तब ग्रामीण घबरा कर पेड़ पर चढ़ गया। मैंने बन्दूक़ चलाई। सुअर लुढ़कता-पुढ़कता पहाड़ के नीचे गया, परन्तु एक जगह सहारा पाकर ठहर गया और फिर मुझसे बदला लेने के लिये पहाड़ पर चढ़ा—इतना घायल होते हुये भी! परन्तु मेरे पास राइफ़िल थी और कार्तूस। उसको मार खाकर फिर वापिस जाना पड़ा।

एक बार तो सुअर घायल होकर लगभग सौ गज़ से, मेरे ऊपर दौड़ आया था।

करामत मियां को हिरन की शिकार खेलते खेलते सुअर मिल गया। बन्दूक़ कार्तूसी तो थी, पर थी इकनाली। सुअर पर दाग़ दी सुअर घायल हुआ और आया करामत के ऊपर। बन्दूक़ फेक कर एक पेड़ का सहारा पकड़ना पड़ा, तब प्राण बचे।

एक ठाकुर की तो गड्ढे में लाश ही पड़ी मिली थी। थोड़ी दूर पर सुअर भी मरा मिला। ठाकुर रात के पहले ही कांटेदार गड्ढे में जा बैठा। बन्दूक़ टोपीदार थी। निशाना जोड़ पर नहीं बैठा। लोगों ने बन्दूक़ चलाने की आवाज़ सुनी। सवेरे गड्ढे के भीतर ठाकुर को जगह जगह फटा हुआ पाया और सुअर के खुरखुन्द के चिन्ह।

घायल सुग्रर का पीछा शिकारी कुत्ते बहुत अच्छा करते हैं। एक डाँग में मेरे एक साथी ने सुग्रर को घायल किया। उसके पास कुत्ते थे तो छोटे छोटे, पर वे थे सीखे हुये। उसने घायल सुग्रर के ऊपर कुत्तों को छोड़ा। कुत्तों ने लगभग आध मील पछिया कर सुग्रर को जा पकड़ा।

मैं भी दौड़ता दौड़ता पीछे गया। जब निकट पहुंचा देखा कि कुछ कुत्ते उसकी पूछ पकड़े हुये हैं, कुछ दोनों तरफ़ से उसके पेट से चिपटे हैं और एक कान पकड़े हुये उसकी पीठ पर जमा हुआ है। वे सब एक झोर में थे। मैं झोर में उतरा। साथी ने मना किया, 'उसके पास मत जाओ। बहुत क्रोध में है। टुकड़े कर देगा।'

मैं न माना। ·३० बोर राइफिल जो हाथ में थी।

मैं ८, १० क़दम के अन्तर पर जाकर खड़ा हो गया। सुग्रर की आंखों से आग सी बरस रही थी। बिलकुल लोहू लुहान था।

सुग्रर ने एक 'हुर्र' करके मेरी ओर झपट लगाने का प्रयास किया। परन्तु आधे दर्जन से ज़्यादा कुत्ते उस पर चिपटे हुये थे। वह आगे न बढ़ सका। मैंने भी सोचा इसको ज़्यादा मौक़ा न देना चाहिये। जैसे ही मैंने बन्दूक़ को कन्धे से जोड़ा झोर के ऊपर से मेरे साथी ने पुकार लगाई, 'बन्दूक़ मत चलाना। कहीं किसी कुत्ते को गोली न लग जाय।'

मैं सुग्रर के दूसरे प्रयास की प्रतीक्षा नहीं कर सकता था—और न वहां से हट ही सकता था। वहां पहुँचने से कुत्तों को ढाढ़स मिल गया था, मेरे हटने से शायद वे अनुत्साहित

हो जाते। अथवा सुअर कुत्तों से छूटकर मेरे ऊपर आ कूदता; तो निशाना बांधने का भी अवसर न मिलता। मैंने उसके सिर पर गोली छोड़ दी। सुअर तुरन्त समाप्त हो गया। परन्तु उसकी दूसरी ओर चिपका हुआ एक कुत्ता भी ढेर हो गया, क्योंकि गोली सुअर को फोड़कर निकल गई थी।

कुत्ते के मालिक से मैंने क्षमा मांग ली।

सुअर जिस प्रकार खेती का विनाश करता है वह मैंने अपनी आंखों देखा है।

वह सावधानी के साथ ज्वार के खेत में घुसता है। अपने नीचे पेड़ को दबाता हुआ आगे बढ़ता है। पेड़ तड़ाक से टूटता है। भुट्टा उसके मुंह में आ जाता है और एक भुट्टे से भूख को प्रज्वलित करके फिर वह आगे बढ़ता है। रखवाले की झंझट ॰ आहट लेता है और फिर अपनी विनाशकारी क्रिया को करता है। रखवाले ने हल्ला गुल्ला किया तो या तो दौड़ पड़ा या उसी जगह घड़ी आध घड़ी के लिये ा। सुविधा पाकर फिर वही सत्यानाश।

ेत में सुअरों का बगर—झुण्ड घुस जाय उसमें तो ॰ हो जाता है।

, मसूर इत्यादि के खेतों को तो वह ऐसा कर किसी ने घासफूस के ढेर लगा दिये हों! किसान प्राग के सहारे पड़े पड़े रातभर चिल्लाते रहते हैं, ाते हैं। शकरकंद, ईख और आलू का तो यह ा है कि उसका पूरा बस चले तो नाम ॰ दे।

मेरी आलू की खेती को तो उसने ऐसा नष्ट किया था कि एक सेर आलू भी खाने के लिये न छोड़े। कुछ दिन रखवाली करते करवाते एक रात चूक हो गई। वही रात सुअर का अवसर बन गई। सवेरे जो खेत को देखा तो ऐसा दृश्य जैसे किसी ने भोंड़ेपन के साथ हल चलाये हों।

मक्का के खेत को भी यह बिछाकर ही रहता है। यों तो चिड़ियां भी इसको चुगते चुगते नहीं अघातीं, परन्तु सुअर के नाशकारी भय के मारे मक्का की खेती ही छोड़ दी है। मक्का की खेती करना मानो विपद को सिर पर बुलाना है। कई जगह ईख की भी खेती छोड़ दी गई है।

मनुष्य जाति के प्रारम्भिक विकास काल में सुअर कितना भयंकर रहा होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है। मारे डर के इसको देवदानव और अवतार तक की पदवी मिल अवतार का प्रयोग किया ज़रूर सुन्दर ढंग से गया है, विकास के मध्य भाग की बात रही होगी।

सुअर का शिकार घोड़े की सवारी पर बर्छे से और यह बहुत सनसनी देने वाला होता है। परन्तु और बहुत ऊबड़खाबड़ नहीं होनी चाहिये।

नौ—

मैं सन्ध्या के पहले ही बेतवा किनारे ढी वाले गड्ढे में जा बैठा। राइफ़िल में पांच कार्तूस डाल लिये। कुछ नीचे रख लिये। रात भर बैठने के लिये आया था, इसलिये ओढ़ना-बिछौना गड्ढे में था।

अन्धेरा हुआ ही था कि एक छोटो खीसों वाला सुअर १५, २० डग की दूरी पर गड्ढे के सामने आया। मैंने राइफ़िल दागी। अँधेरे में निशाना तो बांध ही नहीं सकता था, गोली उसके पेट पर पड़ी। सुअर तुरन्त मेरी सीध में आया। मैंने भी जल्दी जल्दी उस पर चार फ़ायर और किये। एक तो उसके पेट पर पड़ा, बाक़ी छूंछे गये। सुअर बिलकुल नहीं ...।

...ड्ढा नीचे की ज़मीन से छः फीट की ऊँचाई पर था। ...ढ़ने के लिये पथरीली सीढ़ियां सी थीं। यदि सुअर ...ायल न हुआ तो गड्ढे में अवश्य आ जाता। वह ...ी कोशिश कर रहा था, क्रोध में मुँह फाड़ रहा ...। बड़े बड़े दांत पीस रहा था।

... पहले एक सुअर की चोट खा चुका था। सोचा, ...र आज जाते हैं।

...चार जो मन में उठा वह गड्ढे में से भाग जाने ...े ऊपर बेतवा के पथरीले किनारे की खड़ी ... कूद-फांदकर उस चढ़ाई की सुरक्षित चोटी ... किन्तु उसी क्षण इस विचार को दाब

दिया। चटपट नीचे रक्खे हुये कार्तूस उठाये और राइफ़िल में भरे। सुअर उस समय गड्ढे में चढ़ आने का प्रयत्न कर रहा था।

जैसे ही कार्तूस नाल में पहुँचा, लिबलिबी दबी, धड़ाका हुआ और सुअर के प्रयत्न की इति हो गई। मैंने सोचा बहुत बचे। झांसी के दक्षिण में ललितपुर उसका खण्ड-ज़िला है। सागर ज़िले की सीमा पर नारहट गांव है और गांव के पीछे ऊँची पठार और घना जंगल। इस जंगल में एक पुराना तालाब है। फागुन चैत तक इसमें कुछ पानी रहता है। इस ऋतु में सन्ध्या के समय नाहर, तेंदुआ, रीछ, सुअर इत्यादि जानवर पानी पीने के लिये सन्ध्या से लेकर प्रातःकाल तक आते रहते हैं।

तालाब के बन्ध के नीचे महुये के पेड़ हैं। उस सम
महुओं ने अपने फूल टपकाने प्रारम्भ कर दिये थे।

उस स्थान पर सन्ध्या के काफ़ी पहले मैं अपने
शर्मा जी के साथ अपनी छोटी सी गाड़ी से जा पहुँ
बहुत अच्छा था। उस पर मोटर मज़े में चल सक

साथ में पूड़ियां थीं, और आलू, निमक-मिर्च
इकट्ठी करके आग जलाई। आलू भूने और खा
की सीटों पर जा बैठे। ड्राइवर भी थोड़ा बहुत
चुका था, परन्तु बन्दूकें दो ही थीं। वह मोटर
हम दोनों तालाब के किनारे गये। पानी के प
के खुदवां गड्ढे बने हुये थे। हम दोनों एक

सूर्यास्त नहीं हुआ था कि लगभग सौ
एक सुअर आया। शर्मा जी ने बन्दूक उ

एक तो वह ज़रा दूर पड़ता था, दूसरे तमाशा देखने के लिये रात भर सामने थी; सूर्यास्त के पूर्व ही बन्दूक़ का हल्ला करके क्यों जानवरों को बिचकाया जावे ?

उस दिन फागुन की पूर्णिमा थी। चन्द्रमा अपने पूरे गौरव के साथ आकाश में आया। हमारे गड्ढे के पीछे महुये और अचार के लम्बे-तड़ङ्गे पेड़ थे। उनकी छाया में हमारा गड्ढा छिपा हुआ था। पेड़ों की छांह के बाहर चन्द्रमा ने चांदी-सी बिछा रक्खी थी, जो क्रमशः उजली पर उजली होती चली जा रही थी।

साढ़े सात या आठ बजे एक भारी भरकम सुअर हमारे गड्ढे के पास से पानी पर पहुँचा। पास ही था। सहज ही
र सकते थे। परन्तु प्यासे जानवर को न मारने की एक
ी—परम्परा है, इसलिये उस समय बन्दूक़ नहीं चलाई।
र ने पानी में पहुँचते ही पहले धप्प से एक पलोट
र काफ़ी देर तक लोट-पलोट कर नहाता रहा।
अंगड़ाई और फुरेरू ली। फिर थोड़ा ठहर कर
पिया। तब जंगल के लिये लौटा।

वह हमारे गड्ढे से ठीक पन्द्रह डग की दूरी
ा ही उसका शरीर आड़े में आया, मैंने राइफ़िल
ुरन्त गिर पड़ा। परन्तु फिर उठा और गड्ढे
ा प्रयास करने लगा। बन्दूक़ें हम दोनों की
गने की ज़रूरत नहीं पड़ी। सुअर थोड़ी ही
ो गया। हम लोगों ने गड्ढे से बाहर
नाप किया और फिर गड्ढे में जा बैठे।

अभी आठ बजा था। सारी रात रक्खी थी और इतना बड़ा जंगल आसपास था। बस्तियाँ मीलों दूर थीं। इसलिये गड्ढे में चुपचाप बैठा रहना ठीक समझा।

घन्टे डेढ़ घन्टे बाद तालाब के बन्ध पर रीछ आये और वे तालाब के दूसरे किनारे पर पानी पीकर हमारी आंखों से ओझल हो गये। वे मोटर के आस-पास घूम-घूमकर महुये बीनते खाते रहे। ड्राइवर की दम खुश्क थी। वह दबा हुआ मोटर में पड़ा रहा, हाथ में एन्जिन चलाने का डण्डा लिये हुये।

रीछों के चले जाने के बाद ही हम लोगों की मार में एक सुअर और आया। उसके मारे जाने के उपरान्त एक बजे के लगभग तीसरा सुअर आया। वह घायल होकर भागा। हम लोगों ने गड्ढे से निकलकर उसका पीछा किया, परन्तु सवे तक ढूँढ़ते रहने पर भी वह न मिला। जब उसको ढूँ बाद हम लोग सवेरे अपने गड्ढे पर आये तो देखा दो ग़ायब !

पहले भ्रम हुआ शायद शेर उठा ले गया हो ही कुछ मनुष्यों की आहट मिली। वे सहरिये अवसर-भोगी बनकर काम किया था—सुअर जा—छिपाया था।

उनको जल्दी मानना पड़ा, क्योंकि बात कौशल गांठ में न था। हम लोगों ने वे दो लोगों को दे दिये।

यह स्थान झांसी से ८२, ८३ मील द सागर को जो सड़क गई है उससे ब

अमभेरा की घाटी में होकर निकली है वहां तो जंगल का सुनसान सुहावनापन मानो मोहकता की गोद में खेलता है। सड़क की दोनों ओर घने जंगल के ऊँचे-ऊँचे मोटे पेड़ आँख को उलझाये रहते हैं। जंगल के पीछे लम्बे ऊँचे पहाड़ दृष्टि-पथ को रोक लेते हैं और अपने पीछे के स्थलों को गुदगुदी पैदा करने वाले रहस्यों में भर देते हैं।

मैं कई बार इस स्थान पर गया हूँ, पर बार बार जाने का मोह मन में बना रहा। एक बार तो कुछ डगों से एक शेर से बच गया था। ठीक दिवाली की रात थी। झाँसी से सीधा इस घाटी के बीचों बीच आठ बजे रात को पहुँचा। वहां से अमभेरा नाम का नाला बहता हुआ निकला है। नाले र पुलिया है। उस पार हनुमान जी का छोटा सा मन्दिर चबूतरेदार एक पक्की बारहदरी। किसी समय यह पुलिस थी। उस समय ख़ाली पड़ी थी।

ारहदरी के सामने चबूतरे पर हम लोगों ने अपना ा। खाना साथ में था, परन्तु साग-भाजी पकाना कड़ी कण्डे बीनबान कर आग सुलगाने का यत्न मेरी बग़ल में कुछ डग के फ़ासले पर गुरगुराहट। मैं इस गुरगुराहट को पहिचानता हूँ—सब नते हैं। तेंदुये की न थी—शेर की थी। पर बना चला गया।

ारहट गाँव में सुना कि दिवाली से दो दिन में ही शेर ने एक राहगीर को सताया था। मी ज़िले के गौरवमय स्थलों में से एक है।

अमझेरा घाटी से होली की परमा को मैं घर आया, और सन्ध्या के पहले ही अपने पुराने स्थान, भरतपुरा, झांसी से १२ मील दूर, बेतवा किनारे अपने मित्र शर्मा जो के साथ पहुँच गया। होली, दिवाली इत्यादि बड़े बड़े त्योहार हम लोगों ने बरसों जंगलों में ही मनाये हैं।

हम लोग उसी गड्ढे में जा बसे जिसमें कुछ महीने पूर्व सुअर ने मेरी मरम्मत करते करते छोड़ा था।

लगभग रात भर जागते रहे और अमझेरा घाटी के सौन्दर्य और वैचित्र्य पर कल्पना को भटकाते रहे। न कुछ दिखलाई पड़ा और न सुनाई पड़ा। हम दोनों पहली रात के जागे थे ही, चार बजे के क़रीब सो गये।

साढ़े सात बजे होंगे जब मेरी आँख यकायक खुली। दे॰ तो गड्ढे की ढी वाले किनारे की चोटी पर कुछ सुअर ॰ हैं। पहले तो मुझको भ्रम हुआ—शायद गाँवटी— उसी क्षण भ्रम का निवारण हो गया। मैंने आं॰ गांव में न था और न वे सुअर गांवटी हो सकते

मैं झटपट राइफ़िल लेकर गड्ढे में बैठ गय से फिर आंख मीड़ी, सुअर ढी के ऊपर से नी थे। और, गड्ढे की सीध में थे। मैंने तुरन्त चलाई, और, दूसरे ही क्षण दो सुअर गड्ढे के पहले सामने ठीक दो हाथ के फ़ासले पर एक ॰ बन्दूक़ उबारी। वह खिसक गया। दा॰ की तो दूसरा मेरे बिस्तरों के ऊपर फ़ासले पर!

मैं ठीक ठीक नहीं बतला सकता कि क्या हुआ, पर हुआ यह:—मेरी बन्दूक़ उस सुअर की ओर घूम गई, उसी समय लिबलिबो पर उँगली की दाब पड़ी और गोली चली; सुअर के चिथड़े उड़ गये। उसका रक्त मेरे बिस्तरों में भर गया और बोटियों के टुकड़े मेरी कमीज़ में आ चिपटे। सुअर गड्ढे में से भागा और काफ़ी दूर जाकर मरा। उस दिन सुअर मेरे चिथड़े चिथड़े उड़ा सकता था, राइफ़िल की गोली खाने के पहले और पीछे भी। परन्तु मैं कैसे बच गया यह ठीक ठीक कभी समझ में न आया।

मेरे मित्र, मुझसे पहले जागकर, दिशामैदान के लिये नदी में थोड़ी दूर चले गये थे। जिस समय सुअर गड्ढे में आये वे गौन कर रहे थे। पहली बन्दूक़ के चलने पर जैसे ही सुअर ढे पर चढ़े उन्होंने देख लिया था। दूसरी गोली चलने घायल सुअर भागा वे मुझको गड्ढे की ओर दौड़ते ई पड़े। बड़ी घबराहट में थे।

ई टेहुनी में चोट आ गई थी, लोहू निकल रहा घाव सुअर का दिया हुआ न था। भागते हुये थोड़ा-सा चलते ही फिसल कर टेहुनी के बल था।

फ़ुट से ज़्यादा लम्बाई वाली खीसें देखी हैं, इसकी लम्बाई दो दो फ़ीट तक की बतलाते ों में तो इन खीसों को चांदी से मढ़ाकर

खीसों की बहुत-सी कहानियां भी बन गई हैं। एक कहानी ने तो अतिशय की सीमा ही लांघ डाली है।

कहते हैं कि अहमदनगर की ओर पहाड़ों की घाटियों में एक बड़ा प्रचण्ड सुअर था। जब वह दस-बीस शिकारियों के प्राण, और हथियार भी !, छीन चुका तब एक छोटी-सी सेना उसके मुक़ाबिले के लिये गई। सुअर ने उस सेना का भी मुँह मोड़ दिया। और शायद हथियार भी छीन लिये !!

जब एक विशेष रियासत के राजा उस सुअर के मुक़ाबिले के लिये पहुँचे तब कहीं वह मारा जा सका। प्रमाण के लिये कहा जाता है कि उस रियासत की राजधानी में उस सुअर की लम्बी-चौड़ी खीसें चांदी से मढ़ी मढ़ाई रक्खी हैं।

यदि इस कथन को प्रमाण का पद दे दिया जाय अवश्य वह सुअर छोटे से हाथी के बराबर तो रहा ही

सुअर के मारे जाने में गांव वालों की बहुत रुचि एक तो सुअर के मारे जाने से उनका एक दुश्मन क है। दूसरे, गांव की अधिकांश जनता इसको बड़े चा

इसकी चर्बी के अनेक उपयोग होते हैं। कम पिलाने से वे बलिष्ठ और तेज़ हो जाते हैं। ब दर्द और मुदी चोटों पर इसका बहुत प्रयोग कि जहां डॉक्टर, वैद्य और हकीम कोई भी सुलभ अनेक लाभकारी और लाभहीन उपयोग किये

यदि किसी को शिकार की सनसनी क करना है तो सुअर की शिकार से बढ़ जानवर की शिकार को नहीं समझता हूँ

घायल हो जाने के बाद भालू, तेंदुये और शेर को मैंने बहुधा भागते हुये देखा है, परन्तु सुअर को घायल होने के बाद बहुत कम भागते देखा है।

अन्य बड़े जानवरों की तौल में उसका डीलडील छोटा होता है, परन्तु उस छोटे डीलडौल में कितना बल, कितना साहस और कितना पराक्रम होता है!

तेज़ बहने वाली पथरीली बेतवा में मैंने सुअर को ही तीर की तरह सीधा तैरते हुये देखा है।

दस—

एक बार जाड़ों में पहाड़ की हंकाई की ठहरी। लगान लग गये। मैं पहाड़ की तली में बैठ गया और शर्माजी चोटी पर; बीच में अन्य मित्र लगान पर लग गये।

हंकाई होते ही पहले सांभर हड़-बड़ाकर निकल भागे—हंकाई में पहले ज़्यादातर यही जानवर भाग निकलता है। इसके उपरान्त थोड़ी देर तक कोई आहट नहीं मिली। प्रतीक्षा करते करते मुझको लगा जैसे बहुत विलम्ब हो गया हो। लगान पर से उठ सकता नहीं था, क्योंकि हंकैये अभी तक समीप नहीं आये थे।

हंकैयों के समीप आते ही चोटी पर दो फायर हुये। के कुछ क्षण बाद दूसरा।

जब हकैये आ गये हम लोग सब शर्माजी के
देखें तो एक सुअर उनकी बैठक से ढाई या तीन
पर पड़ा है। उनसे मालूम हुआ कि भागते सुअ
गोली पेट पर पड़ी थी। वह गोली के लगते ही
पर विद्युत-गति से आया। दूसरी नाल तैयार
चूक सकती थी—चूकी नहीं। सुअर के खो
गोली के वेग का धक्का उस पर इतना प्रचण्ड
गति रुक ही नहीं गई बल्कि वह चित होकर

सुअर में कितनी ताक़त होती है उसक
लगाया जा सकता है कि पांव में कठोर च
भी वह कितना उछल सकता है।

एक दिन झांसी के निकट ही पाली-पहाड़ी की हंकाई की गई। मालूम था कि सुग्रर निकलेगा, सन्देह था शायद तेंदुग्रा भी निकले। तेंदुग्रा तो नहीं निकला, सुग्रर निकले।

जिस शिकारी के पास से एक सुग्रर निकला उसको शिकार का ग्रनुभव कम था। गोली चलाई, सुग्रर के पैर में सख्त चोट लगी, परन्तु वह काफ़ी उछला ग्रौर ग्राक्रमण करने का बिकट प्रयास किया। ग्रसमर्थ हो चुका था, इसलिये वह कुछ नहीं कर पाया।

सुग्रर बिना घायल हुये भी घुड़की-धमकी देने की प्रवृत्ति रखता है। शिकार के बिलकुल प्रारम्भिक जीवन में एक बार मैं एक छोटे से पेड़ की ग्राड़ लेकर बैठ गया। प्रातःकाल के ोड़ी देर बाद एक बड़ी खीसों वाला सुग्रर सामने ग्राया। मैं एक मित्र की मांग लाया था, बड़े बोर की राइफ़िल ने कभी नहीं चलाई थी, परन्तु चला सकता था। झे देख लिया, खड़ा हो गया। एक घुड़की उसने बन्दूक़ मैं सुधयाये हुये था, परन्तु गोली चलाने में न उठ सकी। सुग्रर चला गया।

ालाक भी काफ़ी होता है। सुग्रर की 'सूध' न्तु कुछ लोगों के इस भ्रम के लिये कोई ग्राधार ुड़ता नहीं है। यह सच है कि वह कभी-कभी सीधा दौड़ता है, परन्तु यह सच नहीं है कि ने में कोई ग्रड़चन होती है। यही बात उसकी में कही जा सकती है। वह सीधा-वीधा नहीं

सोते हुये सुअर के पास किसी के यकायक पहुँच जाने पर वह चौंक पड़ता है, परन्तु ऐसा नहीं है कि वह सदा भाग खड़ा ही होता है। कभी कभी वह चुपकी भी साध लेता है। सोचता होगा बला टल जाय तो फिर आराम से सो जाऊँ।

एक बार मैंने एक झाड़ी में कुछ सुअर पड़े हुये देखे। एक बड़े सुअर पर ताक कर गोली चलाई, परन्तु निशाना ख़ाली गया। सुअर एक किनारे से भाग गये। मैं झाड़ी में घुसा। अनुमान किया कि झाड़ी सूनी होगी। देखा तो बिलकुल पैरों के पास से एक सुअर निकल भागा। ख़ैर हुई कि उसने मेरी टांगों को अपने सपाटे में नहीं भरा। बन्दूक़ चलाने पर मैं तुरन्त झाड़ी में घुस पड़ा था। इस सुअर को निकल भागने की सुविधा नहीं मिली, इसलिये छिपे रहने की चालाकी खेल गय

सुअर को सूंघने की शक्ति प्रकृति ने बहुत मात्रा में
जब वह सचेत होकर अपनी नाक का प्रयोग कर
शायद सूंघने की शक्ति में सांभर ही उसकी ब
सकता है। विन्ध्यखंड में लोग उसको 'सगुनिया-
हैं—अर्थात् वह सगुन का विचार करके चलत
सहज ही शिकारी के हाथ नहीं पड़ता। वायु
नाक के अनुकूल हो तो वह बड़ी दूर से सूँघ
गली काटकर निकल जाता है। उसकी नाक
लेने की शक्ति है। सुअर की गली से ज़रा ऊँ
बैठा हो तो सुअर सगुन-वगुन कुछ नहीं ले पा
ऊपर से निकल जाती है और सुअर को अप
सहायता नहीं मिल पाती।

परन्तु जब वह झरबेरी के बेर खाने पर चिपट जाता है तब उसकी एकाग्रता सूँघने और सुनने की शक्तियों को मानो कुण्ठित कर देती है। बेर के दिनों की शिकार को 'बिरोरी' कहते हैं। सुअर बेरों को कड़कड़ाकर खाता है। रात के सुनसान में एक फर्लांग तक से सुनाई पड़ जाता है। जब बिरोरी की शिकार खेलने वाला शिकारी धीरे-धीरे एक-एक डग को नापता हुआ बेर कड़कड़ाने वाले सुअर के पास जाता है, तब बहुत काफ़ी सावधानी के साथ काम लेना पड़ता है। यह शिकार प्रायः अन्धेरी रात में खेलना पड़ता है। सुअर की कड़कड़ाहट के शब्द पर ही शिकारी को अपने हर एक क़दम को संभालना पड़ता है। गोली चलाने का अवसर तब मिलता ब शिकारी सुअर से ८, १० क़दम के फ़ासले पर रह जाता न् उसके शब्द पर ही बन्दूक़ नहीं चलाई जा सकती। गोली और सुअर के बीच में झाड़-झंकाड़ की ी हैं। या तो गोली इन टहनियों से रिपटकर चली ुअर 'हुर्र हुख' करके ऊपर आता है—भाग्य ो भाग भी जाता है। परन्तु यदि केवल घायल र शिकारी के प्राणों पर आ बनने की पूरी इसलिये शिकारी को एक ओट से दूसरी में जाने को पछियाने का काफ़ी समय तक प्रयत्न करना सुअर एक झरबेरी से दूसरे की ओर आता दिखलाई पड़ा कि फिर बस!

शिकारी को जितनी सनसनी मिलती है मी और प्रकार से मिलती हो। न कोई

मचान, न कोई आड़-ओट, अपनी अटल एकाग्रता और हाथ में सधी हुई तैयार बन्दूक़—और शिकारी प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति के लिये प्रस्तुत। यहां तक कि आक्रमण के लिये दपटते हुये सुअर को छलांग मारकर कूँद-फांद जाने के लिये तैयार। जो यह न कर सके वह बिरोरी की शिकार न खेले। उसके लिये तो मचान या गढ़ा ही ठीक है।

मैंने बिरोरी की भी शिकार खेली है। परन्तु अधिक नहीं।

कई बार सुअर के ठीक पास पहुंच गया, परन्तु सुअर ने देख लिया और भाग गया, मैंने बन्दूक़ नहीं चला पाई।

एक बार ही सफल हुआ। सुअर पर छः या सात क़दम के फ़ासले पर गोली चलाई थी। राइफ़िल की गोली इसलिये सुअर तुरन्त समाप्त हो गया। मुझको अंधेरे—दोनों में—राईफ़िल का बहुत भरोसा रहा में ही एक बार एक सुअर को राइफ़िल से ५० य की दूरी से मारा था।

एक बार पहाड़ की हँकाई कराई गई। क थे। उनमें से कुछ तो बहुत दूर दूर और बड़ी खेल चुके थे। बड़े लोग, रुपये पैसे, समय और की कोई कमी नहीं। चिड़ियों से लेकर अरने भ और हाथियों की शिकार तरह-तरह के बड़े जंग थे। उस दिन की पहाड़ की हँकाई का शिका मित्रों की कृपा से प्राप्त हुआ था। उन्होंने मुझको बैठने को दिया। हँकाई शुरू हो ग

एक बड़ा चीतल मेरे हाथ लगा। थोड़ी ही देर में एक करारा सुअर आया। उस पर मैंने बारह बोर बन्दूक़ की गोली चलाई। गोली पक्की (Solid) थी। भागते हुये सुअर के पेट में लगी। उसने मुझको देखा नहीं इसलिये घायल होकर भागा और जिधर मैं बैठा था उसके पीछे के जंगल में चला गया।

इस हँकाई की समाप्ति पर जंगल के उस भाग की हँकाई करवाई गई जो मेरी पीठ पर पड़ता था और जिसमें घायल सुअर चला गया था।

हम लोगों ने आसनें बदलीं। मैं एक मचान पर चढ़ गया, परन्तु यह मचान लगान की पांत में उल्टा बैठता था। मेरे मित्र मुझसे नीचे की तरफ़ आमने सामने बैठते थे, ऐसे कि गोली ॱती तो एक दूसरे पर पड़ने की संभावना थी। मित्र ने सीटी द्वारा सचेत किया। मैं मचान से उतरकर लगान ें जा लगा।

मचान पर से उतरने के पहले मैंने दुनाली बन्दूक ी और राइफ़िल की नाल में से कार्तूस निकाल पहुँचाकर ताला डाल दिया। जहां मैं खड़ा था की आड़ थी। पेड़ से राइफ़िल टिका दी और ें ले ली। दुनाली ख़ाली थी।

यह घायल सुअर निकला। मेरे मित्र के पास ो उस पर राइफ़िल चलाई। उनकी राइफ़िल र ज़रा टेढ़ा भागा तब उसका घाव मुझको । मैं समझा उनकी राइफ़िल की गोली से उस समय मुझको यह नहीं मालूम हुआ कि

सुअर मेरा ही घायल किया हुआ था। सुअर जंगल में विलीन हो गया। थोड़े सयय उपरान्त मेरे सामने, ज़रा ऊपर की ओर हटकर, जहां से हंकाई आ रही थी, सुअरों का एक झुण्ड आया—इसको 'दार' कहते हैं। सुअर जब निकट आगये मैंने बन्दूक़ को कन्धे से जोड़कर निशाना साधा, घोड़ा ने 'कट्ट' का शब्द किया—कार्तूस नाल में था ही नहीं, सुअर का बिगड़ ही क्या सकता था ? सुअर लौट गये।

मैंने इधर-उधर आँख फेरी—किसी ने मेरी मूर्खता को देख तो नहीं लिया है। तुरन्त दोनीं नालों में कार्तूस डाले और घोड़े चढ़ाकर तैयार हो गया। लौटे हुये सुअरों को हांके वालों ने फिर वापिस किया। सुअर सामने झाड़ी की ओट में आये। मैंने उनकी खरभर सुन ली और दो एक को झांक लिया। सुअरों ने मुझको देख लिया था, इसलिये वे वहीं फिर लोट पड़े और बेतहाशा भाग कर हांके होकर निकल गये और विलीन हो गये। हांके वाले लगे, परन्तु वे ज़रा दूर थे, मुझको दिखलाई नहीं सोचा घोड़ों को चढ़ाये रखना व्यर्थ है। घोड़ों को लिये बन्दूक हाथ में करली और उत्सुकतावश लौ की दिशा में देखने लगा।

अंगलियां बाईं नाल की लिबलिबी को दब पहुँच गईं, परन्तु अंगूठा पहुंचा दाईं नाल वाले घ नाल वाले घोड़े को साधने के लिये अंगूठे से ट वह यकायक गिरकर कील को ठोकर न दे, ग थीं बाईं नाल के घोड़े की लिबलिबी पर औ

था नहीं। धड़ाम से बाईं नाल चल गई। दाईं का घोड़ा गिरा नहीं क्योंकि उसकी लिबलिबी पर दाब ही नहीं थी पर घोड़े का नुकीला सिरा अंगूठे की जड़ में था। बाईं नाल के चलते ही जोर का धक्का लगा। कन्धे पर तो बन्दूक थी नहीं, जो धक्के को झेलता है, दाईं नाल के घोड़े का सिरा अंगूठे की जड़ में धस गया।

मैंने झटपट, सावधानी के साथ, दाईं नाल के घोड़े को साधकर बिठला लिया और बन्दूक़ पेड़ से टिका दी। अंगूठे की जड़ से खून की धार बह निकली। रूमाल से पोंछ-पांछकर मन में मनाने लगा कोई हंकाई वाला या लगान वाला न आ जाय नहीं तो मूर्खता अपने पूरे रूप में प्रकट हो जायगी।
व पर रूमाल बांधने की हिम्मत पड़ नहीं रही थी—मूर्खता
ड़ी जाती, रूमाल का वह बन्धन सारी कहानी कह
मैंने खूब दबा दबाकर रक्त निकाल दिया और पोंछ
।

काई वाले आ गये और लगान वालों को अपने
की आज़ादी मिली, मैं उन मित्र के पास पहुँचा
र पर राइफ़िल दाग़ी थी।

यल हाथ की ओर से उनका ध्यान उचटाने के लिये
ायल हो गया है ज़रा उसका चिह्न देखिये।'

'हां घायल तो अवश्य हो गया है पता

के घायल सुअर के चिह्न देखने लगे, तब तक
री तरह सुखा लिया—मूर्खता ढक गई।

घायल सुअर का चिह्न लेते-लेते मित्र ने एक पत्थर के पास देखा तो राइफ़िल की गोली के टुकड़े पड़े हुये हैं ! मैं भी उनके पास पहुँच गया। मेंने भी वे टुकड़े देखे।

वे बोले, 'भाई, मेरी गोली तो पत्थर पर पड़ी है सुअर पर नहीं पड़ी है। वह आपका घायल किया हुआ सुअर था।'

मैंने सोचा मैं भी अपनी मूर्खता प्रकट कर दूँ। बन्दूक़ चल पड़ने की सविस्तार कहानी सुनाकर, कहा, 'नाल ज़रा ऊँची थी, नहीं तो गोली किसी हंकाई वाले पर पड़ती।'

वे हँसकर बोले, 'यार मेरे चुप भी रहो। न किसी से मेरी कहना, न अपनी।'

हम दोनों ने अपनी झेंप पर पर्दा डाल लिया।

मेरे एक मित्र (अब इस दुनिया में नहीं हैं) f
काफी रुचि रखते थे—अर्थात् जितनी का उनके ख
था। स्थूल इतने कि बिना हांफ के दस क़दम भ
आफत। एक दिन बड़ा दम्भ किया। बोले, 'मैं
में से जानवर पर बन्दूक़ चल देता हूँ।'

मैंने सिधाई के साथ पूछा, 'और वह जान
जाती है ?'

उन्होने ज़रा हेकड़ी के साथ उत्तर दिया,
कोरे पटाखे फोड़ता हूँ ?'

मैंने उस समय बात नहीं बढ़ाई, परन्तु
लेने का निश्चय कर लिया।

एक दिन अवसर मिल गया।

वे तांगा पर बैठकर शिकार के लिये जाने को ही थे कि मैं अकस्मात उनके घर पहुँच गया। उन्होंने मुझे साथ चलने के लिये कहा। मैं तुरन्त राज़ी हो गया—चाहता ही था। बन्दूक़ ले आया और साथ हो लिया।

कुछ मील जाने पर उनको हिरनों का एक झुण्ड मिल गया। गोली चलाने के लिये उन्होंने मुझसे प्रस्ताव किया। मैंने तो न चलाने का निश्चय ही कर लिया था, नाहीं करदी।

'आप ही चलाइये। तांगे से ही चलाइये। हिरन पास ही तो हैं।'

'अजी नहीं। तांगा हिल रहा है। निशाना चूक जायगा।'

'पर मोटर से तो कम हिल रहा है।'

'आप मज़ाक़ समझते हैं। चलाता, मगर घोड़ा भड़क
।'

उतर जाइये। ओट लेकर चलाइये।'

ी एक आड़ के आने पर तांगा रोक लिया गया।

ह तांगे से उतरे।

हिने हुये थे। ढूँकते-ढांकते वे हिरनों की ओर

ह क़दम भी न गये होंगे कि चौकन्ने हिरनों ने

ाया। हिरन भागे।

रनों के पीछे भागने का प्रयत्न करने लगे। उधर

चलाई इधर उनकी धोती अधखुली हो गई।

गोली की हवा तक न फटकी। वे धोती

ँसते हुये तांगे की ओर आये। मारे हँसी के मेरे

थे।

मैंने किसी तरह हँसी को रोककर उनसे कहा, 'यदि सुअर होता और ज़रा सा घायल हो जाता तो आप क्या करते ?'

वे जबरदस्ती हँसी को दबाते हुये बोले, 'क्या करते। सुअर क्या कर लेता ? '

मुझको फिर हँसी आ गई। मैंने कहा, 'क्या कर लेता सो तो मैं ठीक ठीक नहीं बतला सकता, परन्तु इतना कह सकता हूँ कि आप धोती संभालने की फुर्सत न पाते।'

इस पर हम दोनों हँसते रहे लेकिन उस दिन के बाद हम लोगों का साथ शिकार में नहीं हुआ।

दो वकील मित्रों को शिकार में मेरे साथ घूमने की लालसा हुई। मैं इनकार न कर सका। परन्तु मैंने उन बारी बारी से ले जाने की बात तै की।

और कोई सवारी नहीं थी, इसलिये साइकिलों इक्कीस मील जाना था, परन्तु वकील मित्र कम तेरह मील चलने के बाद मेरी साइकिल के चक्के छेद हो गया। तब दोनों गपशप करते हुये अ गये। बेतवा किनारे घुसगवां नाम का एक गां होने के पहले ही पहुँच गये। गांव वालों की स बन्दूकें लिये जंगल की ओर चल दिये।

तीन चार सुअर मिले। मेरे मित्र की सी रहे थे इसलिये मैंने ही बन्दूक़ चला दी। ए रास्ते की रिस वकील मित्र ने मरे हुये सुअर आमोद-प्रिय भी थे इसलिये भी उन्होंने एक

मरे हुये सुग्रर पर उन्होंने धाड़ से गोली छोड़ी। चूकने की कोई बात ही न थी। गोलो लगने पर हँसते हुये बोले, 'बस जी मैंने इसको मारा है। मेरी शिकार पर तुमने बाद में बन्दूक़ चला दी।'

मैंने कहा, 'बिलकुल सही; मुक़द्दमों की सचाइयों से भी ज़्यादा सच।'

फिर हम लोग बैलगाड़ी से उसी रात चिरगाँव रेलवे स्टेशन पर ग्राये ग्रौर सवेरे झांसी पहुँचे। मित्र बहुत थक गये थे, परन्तु उनकी वन-भ्रमरण की कामना कम नहीं हुई। वे ग्रनेक बार मेरे साथ जंगलों ग्रौर पहाड़ों में घूमे हैं।

दूसरे साहब का ग्रनुभव बिलकुल विपरीत रहा।

क गांव में ग्रदालती काम से दूसरे वकील मित्र मेरे साथ मियों के दिन थे। दस बजते-बजते गांव पहुँचे। लू बारह बजे तक हम लोग काम से निवृत्त हो गये। डेढ़ मील पर जंगल था। मैंने उनसे मटरगश्त के कया। लू चल रही थी, इसलिये उनके उत्साह ग्रा गई थी, लेकिन बिलकुल बुझा न था। साथ

ोल चलने के बाद ही वकील–मित्र काफ़ी बोले, 'ग्रभी तक कुछ दिखा नहीं। यों मारे ा फ़ायदा?'

ाकार मिले या न मिले, पर चलने-फिरने के इनकार नहीं कर सकते। लौटकर जब ग्गेगी, रात को बेहिसाब सोग्रोगे।'

जंगल छेवले और हींस-मकोय का था। ऐसी जगह सुअरों के पड़े मिलने की आशा थी। इसलिये लगभग एक मील और भटके। मेरे मित्र को प्यास लग रही थी। ढकाई की शिकार में मैं भी दो कठिनाइयों का अनुभव कर रहा था—अपने को संभालना, और अपने मित्र को दबे-छिपे ले चलना। इसलिये हम लोग लौट पड़े।

मित्र का मुँह सूख रहा था और उनसे चलते नहीं बन पा रहा था।

गांव पहुँचते ही मैंने देखा उनके पैरों में बड़े बड़े फफोले पड़ आये हैं। उनका कष्ट देखकर मुझको खेद हुआ—और क्षोभ भी। एक प्रश्न मन में उठा—क्यों नहीं स्कूलों औ कॉलिजों में ही लड़कों को पक्का और कट्टर बना जाता ?

वकील मित्र ने, कष्ट कम होने पर कहा, 'ग तुम्हारी शिकार। आगे के लिये क़सम खाई।'

किसी किसी ग्रामीण में सुअर के प्रति इतन है कि वह सब-कुछ कर डालने पर उतारू हो ज इतना निडर हो जाता है कि जान पर खेल ज

भरतपुरा गांव के पास ही एक लोधी बीच की पड़ती पर घर बनाये हुये था। जब कुछ न कुछ उत्पात खेतों में करता रहता था हथियार कोई था नहीं। हिंसा ने उसको एक

लोधी शरीर का बहुत तगड़ा था, प एक ही थी; पर थी काफ़ी तेज़।

वह एक दिन संध्या के पहले ही सुअरों की राह पर एक ओट में जा बैठा। कुल्हाड़ी साथ में थी।

सुअर बहुत धीरे धीरे आया। आड़ से लगभग सटा हुआ निकला। लोधी ने आव देखा न ताव, जैसे ही सुअर का पिछला भाग उसकी पहुँच के पास हुआ कि उसने पिछले पैर अपने दोनों हाथों से पकड़ लिये और खड़ा हो गया।

सुअर लगा करने 'हर्र हुख़'। उसने बहुत प्रयत्न लौटकर चोट पहुँचाने का किया, बड़ा बल लोधी के फ़ौलादी शिकन्जे से निस्तार पाने के लिये लगाया, परन्तु सब व्यर्थ।

लोधी अपनी लगन पर दृढ़तापूर्वक सवार था, और सुअर के ेरों को इस प्रकार पकड़े था कि वह किसी तरह भी छुट्टी नहीं का। कुल्हाड़ी क़रीब थी, परन्तु लोधी उसका उपयोग नहीं रहा था।

ाड़ा सुनकर आसपास के किसान कुल्हाड़ियां और र दौड़ पड़े। तब सुअर से उसने छुटकारा पाया।

सुअरों से इस लोधी का डर सदा के लिये छूट ड़े बड़े सुअर लाठियों और कुल्हाड़ियों से मारे। ठ भी हुआ। सुअर के नाम से ही उसको इतनी ह उसकी खोज में दिन-रात, जाड़ा-बरसात, कुछ । यदि इस किसान के पास बन्दूक़ होती तो ल को सुअरों से सूना कर देता।

ूक़ का लाइसैंस प्राप्त करने की चेष्टा भी की, ाइसैंस कौन दिये देता था? न काफ़ी माल- ा ज़िमींदार, और न पुलिस का मुखिया; न

अंग्रेज़ शिकारियों का ख़ुशामदी या किसी अंग्रेज़ का आवुर्दा।

एकान्त जीवन बिताने वाला निडर निर्भीक किसान। उसने अन्त तक अपनी लाठी कुल्हाड़ी का भरोसा किया, और बन्दूक़ की या बन्दूक़ का लाइसैंस देने वालों की कभी परवाह नहीं की।

सुअर के शिकार के लिये जो 'गढ़ा' बनाया जाय वह कांटेदार तो कम से कम होना ही चाहिये, परन्तु मेरे एक साथी हेकड़ी के साथ एक रात कठजामुन की झुरमुट में जा बैठे। कठजामुन में पत्तों की भरमार थी, मोटी डालें बहुत कम थीं। उनके साथ दुर्जन कुम्हार बैठा था, नहीं तो असली बात ॰ पता ही न चलता।

सुअर आया। उन्होंने बन्दूक़ चलाई। सुअर ॰ गया। उसने समझ लिया कि गोली कहां से आई की ओर झपटा।

शिकारी और दुर्जन भागे। दुर्जन ने दूर भा॰ शिकारी लगे काटने चक्कर कठजामुन के झाड़ ॰ सुअर भी चक्कर काटता रहा। सुअर घायल ब॰ इसलिये शिकारी बच गये, नहीं तो वह अपनी उधेड़-बुन कर डालता। चांदनी रात थी, ॰ रहा था।

सवेरे जब मैंने उनसे रात का वृत्त पूछा, ॰ का अनुभव पूछने में प्रमोद होता है, उन्होंने का॰ होकर भाग गया।' दुर्जन हँस पड़ा। उसकी ॰

बहुत खली। वे अपनी झेंप को ढांकना चाहते थे, परन्तु दुर्जन की हँसी उघाड़े दे रही थी। मेरे कुरेदकर प्रश्न करने पर दुर्जन ने कहा, 'सुअर भग गओ और जे कठजामुन को परदच्छना (प्रदक्षिणा) देत रये।'

फिर उसने सारा हाल विस्तार के साथ सुनाया।

ग्यारह—

सांभर और नीलगाय—इसके नर को रोज और मादी को गुरायँ कहते हैं—खेती के काफ़ी बड़े शत्रु हैं। बड़े शरीर और बड़े पेट वाले होने के कारण ये कृषि का काफ़ी विध्वन्स करते हैं।

जब गाँव के ढोर चरते-चरते जंगल में पहुँच जाते हैं तब रोज-गुरायं तो इनके साथ हिलमिलकर चरने तक लगते हैं। रोज-गुरायं मनुष्य से, अन्य जानवरों की अपेक्षा, कम छड़कता है। वह जंगल के बहुत भीतर नहीं रहता। प्रायः जंगल के प्रवेश के निकट ही मिल जाता है। इसके झुन्ड के झुण्ड हैं। मैंने पचास-पचास तक के झुण्ड देखें हैं। इनका पूरा बढ़ जाता है तब उसका रंग नीला हो जाता है घंटियां सी और पूँछ छोटी। सींग भी बड़े बड़ा मज़बूत होता है और दौड़ने में बहुत तेज़। बच्चों को पालते हैं और सवारी का काम लेते जोत कर।

परन्तु नाले और खाई खड्डों को देखते ही पुरखों की याद आ जाती है और फिर वह ना हांकने वाले और गाड़ी वाड़ी की—किसी की करता। बेभाव छलांग मारता है। चाहे गाड़ी बचे या मरे इसकी कोई चिन्ता उसको नहीं

झांसी के एक गुसाईं जी ने रोज के पाली और बड़े होने पर उनको गाड़ी में

सीधे रास्तों पर चलाये गये तब तक उन्होंने अपनी तेज दौड़ से सब को सन्तोष दिया, परन्तु एक दिन जब देहाती मार्ग में एक नाला और बग़ल में खड्ड मिला तब उनको अपनेपन की याद आगई। बिकट छलाँक भरी। गाड़ी लौट गई। गाड़ीवान घायल हो गया और गुसाईजी को प्राणों से ही हाथ धोने पड़े।

जब तक इसके जोड़, सिर या गर्दन पर गोली नहीं पड़ती तब तक, घायल होने पर भी यह हाथ नहीं आता।

इस पशु में एक विलक्षणता है—यह मौक़ा पाकर दिन में भी खेतों में घुस आता है—और रात तो इन सब जानवरों की है ही।

झुण्ड में नर होते हुये भी अग्रणी साधारण तौर पर मांदी है। बहुत सावधान और बड़ी तेज़।

ज-गुरायं के चमड़े को गांव वाले परहे बनाने के काम

।

, खुरी वाले जंगली जानवरों में सबसे अधिक

। ज़रा सा खुटका पाते ही वह ठौर छोड़कर भागता

य: दस-दस पन्द्रह के झुण्ड में रहता है, परन्तु नर

ाया जाता है। यह जंगल के अत्यन्त बीहड़ और

नों को ढूंढ़ता है। अधिकतर लम्बी घास वाले

नी झोरों में रहता है।

र गर्दन को खुजलाने के लिये इसको जहां सलैया

जाते हैं वहां अधिक ठहरता है। सलैया की गोंद

नके लम्बे फन्सों वाले सींगों की रगड़ से आसपास

को महका देती है।

सांभर खेतों पर आधी रात के पहले बहुत कम आता है। जब आता है बहुत धीरे-धीरे, बहुत चुपके-चुपके। यह बड़ी-बड़ी बिरवाइयों को कूद फांद जाता है। शरीर के लम्बे बालों के कारण, सुअर की तरह, इसको भी, कांटों की परवाह नहीं होती। प्रायः कटीली बिरवाइयों में इसके टूटे हुये बाल चिपके मिलते हैं। इसके खुर लम्बे होते हैं और पैर बहुत लचीले। सहज ही पहाड़ों पर चढ़ जाता है।

इसका अगला धड़ बड़ा, पिछला हलका, पूंछ छोटी और आवाज़ रेंक सी, तीखी मोटी और ठपदार होती है। कान घटे की तरह के गोल और बड़े। ये इसके इतने तेज़ होते हैं कि ढुकाई का शिकार तो इसका बहुत ही श्रमसाध्य और कठिन है।

सांभर में सूंघने की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि तीस चालीस गज़ से असाधारण गन्ध को पाकर तुरन्त कर चला जाता है।

होली की छुट्टियों में भरतपुरा गया। दुर्जन ने पहले ही नदी के एक टापू में एक बड़े सांभर के चि दिया। कठजामुन के काफ़ी झुरमुट उन चिन्हों के दुर्जन के साथ एक झुरमुट में सूर्यास्त के पहले ज में भरतपुरा वाले मेरे मित्र ने जंगल में केसर इत्रपान से होली मनाई थी। ख़श के इत्र का उनक था। उन्होंने मेरे कपड़ों में पोत दिया। उन्हीं कप मैं कठजामुन के झुरमुट में दुर्जन के साथ बैठा थ

लगभग आठ बजे सांभर आहट लेता हुआ स्थान की ओर आया। जब पच्चीस तीस गज़

आ गया होगा उसने नथने फुफकारे, खश की गंध ने उसको अपने शत्रु की उपस्थिति बतला दी, उसने ज़ोर के साथ अपनी बोली में आश्चर्य या भय प्रकट किया और भाग गया।

दुर्जन उस समय बैठा बैठा सो रहा था। जैसे ही सांभर ने आवाज़ लगाई दुर्जन चौंक पड़ा। उसके आगे के पैर उठ गये और मेरी कनपटी से जा टकराये। मुझको बहुत हँसी आई। मैंने कहा, 'दुर्जन, तुम्हारी नीद के खुर्राटे ने सांभर को भगा दिया।

दुर्जन बहुत सहमा, परन्तु थोड़ी ही देर में बोला, 'बाबू साब, काए खों लच्छिन लगाउत तुमाए अतर ने भगाओ ंभर खों।'

यह अगोट पर या हंकाई में सहज ही हाथ चढ़ जाता है। ्वाल पकाई जाने पर बहुत मुलायम और लोचदार जूते, टांगों के टकोरे; दस्ताने, बासकट इत्यादि बनाये रन्तु पानी में इसका चमड़ा लोचड़ हो जाता है। कठोर ठण्ड में भी रात को पानी में डुबकियां र ठण्डे कीचड़ में लोट लगाता है। यह जंगल से ो की पूरी धार को पार करके खेतों में पहुँच ट आता है और जानवरों से दो घण्टे पहले। ाद फिर वह खेतों में नहीं ठहरता।

र पर होता है तब एक नर दूसरे से बेतरह सींग। यह लड़ाई मांदी के पीछे या झुण्ड का अगुआ न्दता में होती है। कभी कभी इतनी खटाखट सपास का जंलल गूंज उठता है।

सांभर पानी पीने के लिये सुनसान जंगल में दिन में हो बाहर निकल पड़ता है। वैसे इसके पानी पीने का समय सन्ध्या के उपरान्त ज़रा रात बीते है।

एक दिन, गर्मियों में, मैं नदी के किनारे एक दूसरे गढ़े में २, ३ घण्टे दिन रहे जा बैठा। 'गढ़कुण्डार' पूरा नहीं हो पाया था। झांसी में बहुत कम समय मिलता था। छुट्टियों में शिकार के लिये जंगल की राह पकड़ लेता था, परन्तु लिखने की सामग्री साथ ले जाता था। उस दिन गड़े में 'गढ़कुण्डार' लिख रहा था, क्योंकि सूर्यास्त के लिये काफ़ी समय था। साथ में करामत था। मैंने उसको आहट लेते रहने के लिये कह दिया था।

सूर्यास्त होने को आ रहा था। मैं अपनी धुन में मस्त करामत आहट लेते लेते और जानवरों की बाट जोह॰ अलसा उठा था कि सांभरों का एक झुण्ड गढ़े से डग की दूरी पर आया। करामत ने मुझको सकेत उनको देखा। वे सब एक ही स्थान पर पाना परस्पर कुश्तं-कुश्ता कर रहे थे। करामत ने ब॰ लिये इशारा किया। सांभर मुझको इतने मोहक कि मैं बन्दूक न चला सका। इनकार कर दिय पानी पीकर वहां से धीरे-धीरे चल दिये त निष्क्रियता पर थोड़ा पछताया।

सांभर जब जंगल के सुनसान को चीरता तब जंगल की महिमा पर मुहर-सी लग जाती

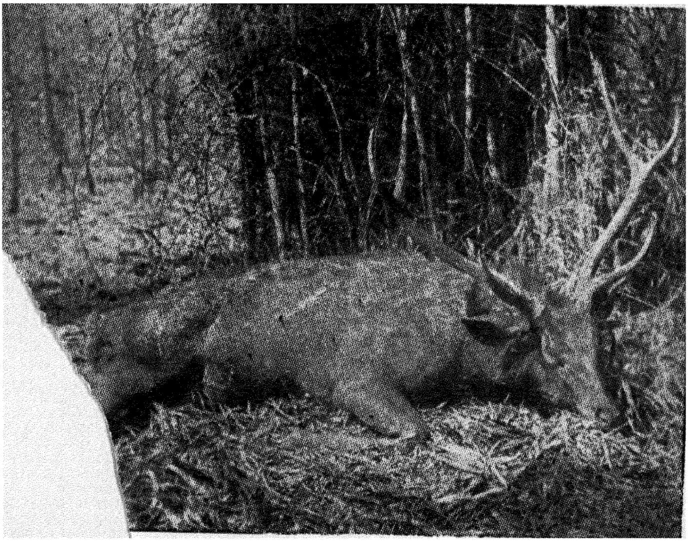

सांभर

सांभर से बारहसिंगा छोटा होता है। उसके सींग सांभर के सींगों से भी अधिक सुन्दर होते हैं। सिर पर सींगों का झाड़-सा जान पड़ता है। मण्डला ज़िले के कान्हाकिसली नामक जंगल का मैंने थोड़ा-सा भ्रमण किया है। कान्हा-किसली जंगल में शिकार खेलने की अनुमति नहीं मिलती। मुझको इस जंगल में शिकार नहीं खेलना था, खेल ही नहीं सकता था, परन्तु उसकी बड़ाई बहुत सुनी थी, इसलिये कुछ मित्रों के साथ भ्रमण के लिये गया था।

हम लोगों के पहुँचने के पूर्व हालैंड की एक कम्पनी जंगली जानवरों का चित्रपट बनाने के लिये अपनी मशीनों के
ा काफ़ी समय तक ठहरी रही थी।

म लोगों ने साज, सरही और सागौन के विशाल समूह
जंगल में देखे ही विन्ध्याचल और सतपुड़ा की बिकट
ऊंचाइयों को देखकर श्रद्धा में डूब जाना पड़ा था।
ार्ग पर जायें उसी पर शेरों, जंगली भैंसों इत्यादि
देखलाई पड़ें।

ा में एक पथरीली उँचाई का नाम है श्रमण
श्रमण जिसकी कथा पुराण में प्रसिद्ध है,
े दशरथ ने अपने बाण से वेध डाला था और
ये हुये पाप के बदले में भयङ्कर शाप पाया था।
ड़ी के नीचे एक पुराना तालाब था। लोगों ने
रा बतलाई—उसी श्रमण की यह पहाड़ी है
ा के किनारे राजा दशरथ ने अपने तीर से
ले डाला था।

हम लोग तालाब के बँध पर चढ़े। उसमें पानी बिलकुल न था, पर पेड़ों की छाया में बारहसिंगों का बड़ा भारी झुण्ड बैठा था। उस जंगल में बन्दूक़ न चलने के कारण और बिरले ही मनुष्यों के अल्प विचरण के कारण जानवर निर्बाध रहते और घूमते हैं। हम लोग तालाब के बंध पर कई क्षण खड़े रहे, परन्तु बारहसिगे विचलित नहीं हुये। जब हम लोगों ने आपस में बातचीत शुरू की तब वे दो दो चार चार करके खड़े हुये। मैंने उनको गिनने की चेष्टा की। एक सौ अट्ठारह तक गिना। परन्तु वे उस स्थान से भाग गये। एक सौ अट्ठारह से अधिक थे।

अब यह जानवर अन्य जङ्गलों में बहुत कम हो गया

हुशंगाबाद के बाहर इटारसी सड़क पर एक पहाड़

इसकी भीमकाय चट्टानों के भीतरी भाग पर कुछ प्रा

(Cave-paintings) हैं। उनमें एक जाति

का भी अंकन है जो बारहसिंगा से कहीं बड़ा,

मिलता-जुलता है। अब यह जानवर भारतवर्ष

नहीं है।

बारहसिगा जङ्गल का सौन्दर्य है। इसक

मारा जाय तो भी शायद कोई हानि नहीं, क्य

के पास वाले जङ्गलों में नहीं पाया जाता।

दूसरे जानवर जो खेती को कम नुकस

गये हैं, चौसिंगा, वन-भेड़ और कोटरी हैं।

चौसिंगा कुछ बड़ा होता है। कोटरी अ

भग एक ही डीलडौल के होते हैं। चौसिंगा

भाग पर दो सींग होते हैं, ज़रा लम्बे, और अगले भाग पर कुछ छोटे दो। रंग गहरा खरा। वन-मेड़ इससे मिलती-जुलती है। इन दोनों की रक्षा इनकी फुर्ती और सावधानी में है। चिकारे की तरह ये भी ज़रा से खुटके पर कूदते-फांदते नज़र आते हैं। ज़रा चूके कि गये।

कोटरी विलक्षण प्रकार का दबा हुआ कूका लगाती है। विन्ध्यखण्ड के जङ्गलों में काफ़ी संख्या में पाई जाती है। जोड़ी के सिवाय इसके झुण्ड बहुत कम देखे गये हैं। घने बेगरे दोनों प्रकार के जङ्गलों में पाई जाती है। कहते हैं यह ेर के आगे आगे चलती है। असल बात यह है कि शेर के ल पड़ने पर जङ्गल में भगदड़ मच जाती है। जब कोटरी न होकर बोलती है तब लोग समझते हैं कि वह जङ्गल के आगमन की सूचना दे रही है।

बारह—

एक समय था जब हिन्दुस्थान में सिंह—गर्दन पर बाल, अयाल वाला—पाया जाता था। काठियावाड़ में सुनते हैं कि अब भी एक प्रकार का सिंह पाया जाता है। नाहर या शेर ने, जिसके बदन पर धारें होती हैं, अपना वंश बढ़ाकर इसको जंगलों से निकाल बाहर कर दिया है।

ग्वालियर-नरेश, महाराज माधवराव ने, एफ्रिका की नसल के कुछ बच्चे शिवपुरी के पास के जंगलों में छुड़वाये थे। वे बढ़े और उनकी सन्तान, कुछ सिंह, शिवपुरी के आसपास के जंगलों में अभी बने हुये हैं।

सिंह का अगला भाग भारी होता है। मुंह चौड़ा- और खोपड़ा बड़ा। गर्दन पर अयाल होने के का- विशाल और भयानक प्रतीत होता है, परन्तु वास्त- दार नाहर के बराबर बलवान, प्रचण्ड या पाजी शिकार इसकी धारीदार नाहर की जैसी ही खे- परन्तु मुझको एक भी नहीं मिला इसलिये मेरा उसके विषय में बिलकुल नहीं है।

ग्वालियर राज्य के जंगल झांसी जिले से लिये जानवरों का आना जाना यहां वहां से ब- लगभग बाईस साल हुये जब ग्वालियर के जंगल भक्षी सिंह झांसी के जंगलों में आ धमका। पह- तहसील के वांसी नामक ग्राम के आसपास त रहा। दूर दूर से कुछ अंग्रेज़ शिकारी उसके

परन्तु वह इतना चालाक था कि किसी की भी अंटी पर न चढ़ा। मैंने उन शिकारियों की असफलता का वर्णन एक अंग्रेज़ी पुस्तक में पढ़ा है। बांसी से टलकर यह मनुष्य-भक्षी बेतवा के किनारे-किनारे ओर्छा के जंगल में आया और फिर वहां भटकता घूमता मेरे अड्डों के निकट आ गया।

मुझको हर छुट्टी में उन जंगलों में विचरण करने का अभ्यास था जिनके निकट यह मनुष्य-भक्षी आ गया था।

जब मैं छुट्टी में अपने अड्डों पर जाता तभी सुनता—अमुक गांव में एक आदमी को उठा ले गया, फ़लाने गांव में एक गौरत को उठाकर खा गया। हाथ किसी के पड़ता नहीं था। लिये जन-परम्परा ने एक प्रेत की सृष्टि की। कहा जाने एक जादूगर धोबी मरने के बाद नाना रूप धारण करके क्षण करने लगा है। बेहथियार वाली जनता को रने में देर नहीं लगी।

ार खेलने प्रायः अपने मित्र के साथ जाया करता बार अकेला गया। सुना कि मनुष्य-भक्षी ो वाले गड्ड के निकट, जिसका उपयोग मैं सदा आ गया है। मेने सोचा यदि प्रेत है तो शिकारी ेत से कम नहीं होता है, इसलिये कोई डर नहीं, य-भक्षी सिंह है, जैसा कि मुझको विश्वास था वा जायगा। रात भर अनिमेष जागने का ा था और यह भरोसा था कि जागते हुये में , चाहे वह सिंह, नाहर या तेदुआ हो, मुझको

सहज ही नहीं दबा पायगा—सुनता आया था कि मनुष्य को परमात्मा ने सारी सृष्टि के रचने के उपरान्त बनाया था।

में सांझ के पहले ही अपने चिरपरिचित गढ़े में जा बैठा। जब सन्ध्या होगई, बिस्तरों में टार्च को ढूँढ़ा। उसको गाँव में ही भूल आया था, और रात निपट अंधेरी थी। टार्च के लिये गाँव को लौटकर जाने और गढ़े में वापिस आने का अर्थ था चार मील, और यदि मार्ग में ही किसी झाड़ी की बग़ल से मनुष्य भक्षी सिंह ऊपर आ कूदा तो सारी शिकार बेहद किर-किरी हुई।

बिस्तर फैलाकर गढ़े में बैठ गया। ठण्ड के दिन थे ओवरकोट पहिना और कम्बल से पैर ढक लिये। राइि भरकर उसी पर रखली और बीस कार्तूसों का डिब्बा रख लिया—मानो मनुष्य भक्षी सिंह उनके एक अँ चला लेने की मुहलत देता।

पहले तो अंधेरा बहुत बुरा लगा, फिर वह बन गया। यदि मैं मनुष्य भक्षी को बिना बहुत नहीं देख सकता था तो वह भी तो मुझको नहीं था। सूँघ ज़रूर सकता था, परन्तु सूँघने के नाक से फूँ फूँ करनी पड़ती, मैं सुन लेता और के लिये पहले ही सावधान हो जाता। मैं सामने बगल—बैठे बैठे और उझक उझक कर भी। मै भर में इतनी चौकसी कभी नहीं की।

चौकसी करते करते आधी रात हो गई। निकट संसर्ग में आने के कारण मन में धुक-

रही। बन्दूक़ हटाकर बगल में रख दी और अकड़े, सिकुड़े हुये पैरों को सीधा करने के लिये लेट गया। तारों पर टकटकी जमाई।

बेतवा की धार चल रही थी। थी पतली ही। कंकड़ों से टकरा कर धार एक बंधा हुआ शब्द कर रही थी। टिटहरी बीच बीच में बोल जाती थी। किनारे के ऊपर वाले पेड़ों पर बसेरा लिये हुये डोंके ठहर ठहरकर टुहक लगा जाते थे। झींगुर झंकार रहे थे। दूर जंगल से कभी चीतल का कूका और कभी सांभर की रेंक सुनाई पड़ जाती थी। कभी कभी उल्लू और कभी चमगादड़ अपने पंखे फड़फड़ाते इधर से उधर ·कल जाते थे।

मुझे नीद का नाम न था।

न का तीसरा पहर समाप्त होने को आ रहा था। मैं ें कई बार बैठ और लेट चुका था। मैं लेटा हुआ न से ही छप छप का शब्द सुनाई पड़ा। मैं तुरन्त साथ बैठ गया। राइफिल साधी और लिबलिबी ल दी। पानी की धार जहां से छप छप का शब्द । मेरे गढ़े से ६०, ७० फीट की दूरी पर होगी। कर प्रतीक्षा करने लगा।

मने एक आकार आया और रुका। आकार और चौड़ा न था जितना मेरे अनुमान ने बना में, बिना निशाना लिये हुये, मुझको राइफिल ास था, इसलिये मनमें बहुत शंका न हुई। ां की। मुझको साफ़ सुनाई पड़ी। लिबलिबी

पर तुरन्त ऊँगली दबी और ज़ोर का 'धड़ाम' शब्द हुआ। जब तक 'धड़ाम' की गूँज दुगुन और तिगुन हुई मैंने चटपट दूसरा कार्तूस नाल में पहुँचा दिया। मैं दूसरा कार्तूस भी फोड़ता, परन्तु वह आकार धराशायी हो गया था, उसकी सांस ज़ोर ज़ोर से चल रही थी। मुझको विश्वास हो गया कि—

सासें कुछ पल की ही हैं। कुछ पल के बाद उसकी सांस बन्द हो गई, वह समाप्त हो गया। परन्तु इतना अंधेरा था कि अनुमान भी नहीं कर सकता था किस जानवर पर गोली चलाई है। इतना साहस नहीं कर सकता था कि गढ़े को छोड़ कर उसके पास जाता और अनुसंधान करता।

प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल के पहले पतले से चन्द्रमा का उदय हुआ, उसके प्रकाश से कोई सहायता नहीं मिली। उसके प्रकाश में गढ़े के सामने पड़े हुये मृत पशु का आका की सहायता से कुछ लम्बा ही दिखता रहा।

ज्यों त्यों करके पौ फटी। उजाला हुआ। पशु लकड़भग्गा है! कार्तूस को ख़राब करने का हुआ। यदि वह मनुष्य-भक्षी सिंह ही होता ठिकाने से पड़ती—लकड़भग्गे के गले से ज़रा ह निशाना लगा था।

बिस्तर उठाने वाला सूर्योदय के बाद आ गय को देखकर वह हँसा। बोला, 'मैं खेत पर जाग बन्दूक़ का अर्राटा हुआ। सोचा था कोई खाने मरा होगा। यह तो कुछ भी न निकला।'

मैं कुछ और सोच रहा था। मेरे साथ लगभग अनिवार्य रूप से घूमने वाले इस शिकारी का नाम दुर्जन कुम्हार था। बहादुर, कष्ट सहिष्णु और बहुत हँसोड़।

बेतवा के भरकों में घूमते हुये एक दिन हम दोनों ने एक टीले के चौरस पर कुछ विलक्षण सी गठरियां लुढ़कती-पुढ़कतीं देखीं। छिपते-छिपते हम दोनों बहुत निकट पहुँच गये। देखें तो ३, ४ लकड़भग्गे किसी जानवर का भोजन कर रहे हैं। शायद गांव के किसी आवारा कुत्ते को मार लाये थे। मेरी गांठ में कुल पांच कार्तूस थे। तीन हिरनमार छर्रे के और दो चार नम्बर के—सरसों के दानों से भी छोटे छर्रे वाले। हिरन-
'र छर्रे से मैंने एक लकड़भग्गे को गिरा दिया। उसके गिरते
ाक़ी वहां से भागे नहीं बल्कि गिरे हुये लकड़भग्गे का
र करने लगे और उसको चीड़फाड़ भी डाला। मैंने
गिराया। तीसरा लकड़भग्गा उस गिरे हुये पर चिपट
अपने बीभत्स कर्म में निरत हो गया। मैंने इस पर
लाई और ओट छोड़ दी। यह गिर नहीं सका,
भागा। तब एक कोने में चौथा लकड़भग्गा
ा। वह तुरन्त भागकर एक मांद में जा घुसा।
ग्गा भरकों के बीच के एक छोटे से नाले में जा
स पर चार नम्बर का बारीक छर्रा चलाया, उस
क प्रभाव नहीं पड़ा; परन्तु वह नाले में दबक

'ता उसके पास पहुँचा। उसके पास पहुँचते ही
ने एक उचाट ली और दुर्जन की ओर बढ़ा।

दुर्जन ने चक्कर काटकर नाले को फांदना चाहा। फांदने में दुर्जन की कमर लचक गई और रीढ़ का एक गुरिया धमक खा गया।' 'ओ मताई खा लओ' चिल्लाकर दुर्जन गिर पड़ा।

मैं जिस टीले पर खड़ा था उसके नीचे एक छोटा टीला और था। उस टीले के नीचे नाला था। दुर्जन को गिरा देखकर लकड़भग्गा डरा और मेरी ओर आया। मेरे पास सिवाय चार नम्बर के एक कार्तूस के और कुछ न था। जैसे ही क्रुद्ध लकड़भग्गा आठ दस फीट रह गया, मैंने उस पर चार नम्बर कार्तूस चला दिया। वह खतम हो गया। मैं दुर्जन को उठाकर गांव ले आया। लकड़भग्गा ज़रूर बहुत डरपोक होता है परन्तु घायल होने पर दबे पांव, प्राण बचाने के लिए आक्रमण कर देता है।

तेरह—

अगली छुट्टी में मैं अपने मित्र शर्मा जी के साथ उसी गढ़े में आकर बैठा। चांदनी ९ बजे के लगभग डूब गई। अंधेरे की कोई परवाह नहीं थी। एक से दो थे, और टार्च भी साथ था।

जिस घाट पर हम लोग गढ़े में बैठा करते थे उससे ऊपर की ओर लगभग डेढ़ सौ गज़ पर एक घाट और था। वहां होकर उस पार से चिरगांव की हाट के लिये आने जाने वाले ेग निकला करते थे। उनको कभी ज़्यादा रात भी हो जाती रन्तु मनुष्य-भक्षी सिंह के भयानक समाचारों ने सन्ध्या ान्त के आवागमन को बन्द कर दिया था।

रा हो जाने पर मुझको आलस्य मालूम होने लगा। ो का निश्चय किया। शर्माजी से कहा, 'भाई यह ा रहा, बारह बजे के बाद मेरा।'

ान लिया। वे अपनी दुनाली में गोली के कार्तूस । थोड़ी देर तक तो मैं तारों को गिनता रहा। झपी।

किसी के उतरते आने की आहट मिली, परन्तु में हल हो गई।

ी बन्दूक़ चली—'धायं'। उधर से शब्द हुआ, ाये!'

उठ बैठा। कलेजा धक धक करने लगा ं सायं होने लगी। शर्मा जी का भी बुरा

हाल था। टॉर्च जलाकर देखा तो एक आदमी सफ़ेद रज़ाई ओढ़े हमारे गढ़े की ओर आ रहा है। विश्वास हो गया कि मरा नहीं है, परन्तु सन्देह था शायद घायल हो गया हो।

मैंने कई प्रश्न एक साथ कर डाले, 'लगी तो नहीं ? बच गये ? कौन हो ? कहां जा रहे थे ?'

उसने कहा, 'बहुत बचे।'

वह असल में मार्ग भूलकर इस घाट पर आ गया था। उन दिनों मनुष्य-भक्षी सिंह का शोर तो था ही, अन्धेरे में शर्माजी ने समझा मनुष्य-भक्षी निकला जा रहा। निशाना उनका अच्छा था, परन्तु उस बटोही का भाग्य कहीं बढ़कर

हम लोग दुनाली से छर्रा न चलाने की शपथ सी ले थे। छर्रे का घायल जानवर देर में मर पाता है, इसलि लोगों ने बहुत पहले निश्चय कर लिया था कि गोर् कार्तूस का ही व्यवहार किया करेंगे, पड़ गई तो तुर बच गई तो अपनी बला से—भले ही जानवर भाग

चौदह—

मोर, नीलकण्ठ, तीतर, वनमुर्गी, हरियल, चण्डूल और लालमुनैयां जंगल पहाड़ और नदियों के सुनसान की शोभा हैं। इनके बोलों से, जब बगुलों और सारसों, पनडुब्बियों और कुर्चो की पातें की पांतें ऊँघते हुये पहाड़ों के ऊपर से निकल जातीं हैं, तब प्रकृति में उल्लास सा भर जाता है। नीलकण्ठ और बगुले का मारना क़ानून में निषिद्ध है। मोर गांव के निकट नहीं मारा जा सकता, चण्डूल और लालमुनैयां को कोई ीं मारता, परन्तु तीतर; वनमुर्गी और हरियल के लिये तो वाले ललकते से रहते हैं।

में से केवल मोर खेती को हानि पहुँचाता है। ऐसा सुन्दर गेहूँ चने इत्यादि को किस बुरी तरह खाने वाला! धा उगा नहीं कि इसने उखाड़ उखाड़कर उनका ा। किसान जब इन सबकी मार से थक जाता है जन्य सन्तोष के साथ कहता है, 'यदि इन सबसे जाय तो घर में रखने को जगह ही न रहे!' गह न रहे परन्तु बच नहीं पाता। अधिक ा जाय तो क्या किसान उसको फेक देगा?

ीपल, बरगद और ऊमर के पेड़ों पर अधिकतर है। इसकी बारीक सीटी कभी कभी मनुष्य म में डाल देती है, परन्तु मनुष्य की बजाई मता रहती है, इसकी सीटी लगातार एकसी ो भूमि पर बैठा हुआ शायद ही किसी ने देखा

हो, परन्तु वह बैठता है—पानी पीने के लिये और दाने चारे के लिये ही। इतना हरा पीला होता है कि पेड़ों के हरे हरे पत्तों में छिप जाता है। अधिकतर इसकी सीटी ही इसकी उपस्थिति का पता देती है।

तीतर सवेरे शाम मार्गों, पगडंडियों और खुले मैदानों में जहां ढोर गोबर छोड़ जाते हैं, पाया जाता है। यह ज़्यादा नहीं उड़ सकता है। थोड़ी दूर उड़कर फिर तेज़ी के साथ पन्जों के बल भागता है। तीतर दिन चढ़ते ही झाड़ी झकूटों में जा छिपता है और सन्ध्या के पहले लगभग चार बजे फिर अपने प्रवास से बाहर निकल पड़ता है।

इससे मिलती-जुलती एक चिड़िया भटतीतर होती इसका रंग मटमैला होता है। कटी हुई तिली के खे बहुधा पाया जाता है। आहट पाकर खेत के कूड़ों में दबकर बैठ जाता है कि पास से भी नज़र में नहीं बहुत पास पहुँच जाने पर यह फड़फड़ाकर उड़ भटतीतर बहुत ऊँची और लम्बी उड़ान ले सकत इसका इतना तीक्ष्ण होता है कि ऊँची उड़ान पर पड़ जाता है।

वनमुर्गी और पालतू मुर्गी में ज़्यादा अन्तर न भी दोनों की लगभग एकसी होती है। पालतू कुछ लम्बी खिच जाती है, वनमुर्गी की बां होती है।

नीलकण्ठ शिकारी पक्षी है। इसका नील सुन्दर, इतना मोहक होता है कि वह शकुन

गया है। पर इसकी बोली लटीफटी सी लगती है। कीड़ों-मकोड़ों की शिकार अधिकतर करता है, परन्तु छोटी चिड़ियों से भी इसको कोई परहेज़ नहीं है—पन्जे में पड़ जाय तो। चंडूल, लालमुनैयां देखने में अच्छे और सुनने में तो कहना ही क्या है।

रात को तीसरे पहर जब ये पक्षी अपने मिठास भरे स्वरों का प्रवाह बहाते हैं, तब किसी भी बाजे से उनकी मोहकता की तौल नहीं की जा सकती। मैंने तो गड्ढों में बैठे बैठे इनकी मनोहर तानों को सुनते सुनते घंटों बिता दिये। बन्दूक़ एक रफ़ रख दी और इनके सुरीले बोलों पर ध्यान को अटका ग। जानवर पास से निकल गये, परन्तु मैंने बन्दूक़ नहीं । ऐसा जादू पड़ गया कि मैंने कभी कभी सोचा, खेतों वाली का सारा ठेका क्या मैंने ही ले रक्खा है?

पन्द्रह—

मध्यप्रदेश कहलाने वाले विन्ध्यखण्ड में ऊँची ऊँची पर्वत श्रेणियां, विशाल जंगल, बिकट नदियां और झीलें हैं। शिकारी जानवरों की प्रचुरता में तो यह हिन्दुस्थान की नाक है। किसी समय विन्ध्यखण्ड में, हाथी और गेंडा भी प्राप्य थे। विष्णु-गुप्त चाणक्य ने तो उनका ज़िक्र किया ही है अकबर के युग में भी वे प्राप्य थे और आज से लगभग सौ वर्ष पहले तक इनकी उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं। अब तो इनकी शिकार खेलने के लिये हमारे यहां के साधन-सम्पन्न शिकारियों को हिमा की तराई और असम के जंगलों में जाना पड़ता है।

अब भी विन्ध्यखण्ड के जंगलों में जो कुछ है कुत लिये बहुत है। बंगाल का नाहर अपने बलविक्रम औ के लिये विख्यात है, परन्तु मण्डला, बालाघाट औ के जंगलों में उससे भी बड़े शेर पाये जाते हैं। शि एक पुरानी पुस्तक में मैंने बारह फ़ीट की लम्ब का हाल पढ़ा है। अब भी दस ग्यारह फ़ीट की दुष्प्राप्य नहीं हैं। बड़े बड़े भालू, अरने भैंसे, क और जंगली कुत्ते इन जंगलों में बहुतायात से

बिलासपूर ज़िले में एक साधन के सहारे मित्र एक दिन जा पहुँचे। रात को छकड़े कि दूसरे दिन नानबीरा नामक ग्राम में पहुंचना थ पर मार्ग में सरगबुंदिया नाम का गांव मिला नाम सरगबुंदिया—स्वर्गबिन्दु—क्यों पड़ा,

की खोज करने का मोह हुआ। गांव में दो पोखर थे। दोनों में लोग नहाते थे, और उनका पानी भी पीते थे। आसपास पानी का और कोई ठिकाना न था। कम से कम, गर्मियों की ऋतु में, मुझको नहीं दिखलाई पड़ा। गांव खासा था और पानी के केवल दो पोखर। मैंने सोचा स्वर्ग की ये दो बूँदें ही इस गांव को सरगबुंदिया की संज्ञा प्रदान कर रही हैं।

सरगबुंदिया में अपना भोजन और उसका पानी पीकर हम लोग सन्ध्या के पहले नानबीरा पहुँच गये। जंगलों पहाड़ों से घिरा हुआ नानबीरा बड़ा गांव है। वहां एक स्कूल भी है। ईस्टर की छुट्टियों के कारण स्कूल बन्द था। हम लोगों के साथ बिलासपूर ज़िला बोर्ड के एक कर्मचारी--श्री मानिकम् थे। उनकी कृपा से स्कूल में ठहरने की सुविधा मिल गई। जब हम लोग स्कूल के अहाते में पहुंचे कुछ लड़के खेल रहे थे। लड़के संकोच में आकर वहां से खिसकने को हुये। मैंने रोक लिया। थोड़ी-सी बातचीत की।

मैंने पूछा, 'तुम लोगों ने शेर देखा है ?'

उत्तर मिला—'हां।'

प्रश्न—'भालू, तेंदुआ, भेड़िया ?'

उत्तर--'सब देखे हैं।'

प्रश्न—'तुम लोग मांस खाते हो ?'

उत्तर—'हां।'

प्रश्न—'किस किस का ?'

इस पर लड़के एक दूसरे का मुँह ताक कर हँसने लगे। मैंने अनुरोध किया, 'सकुचो मत। बतलाओ।'

एक लड़का बोला, 'ये लोग चूहा और कउआ भी खाते हैं। हम लोग नहीं खाते।'

'चूहा और कउआ!' मुझको आश्चर्य हुआ।

मैंने प्रश्न किया, 'तुम लोग कौन जो चूहा और कउआ नहीं खाते?'

'मुसलमान।' उस लड़के ने उत्तर दिया।

'और ये लोग कौन हैं जिन्हें चूहा और कउआ भी हज़म हैं?' मैंने पूछा।

लड़के ने हँसकर उन लोगों की जाति बतलाई।

मैंने कहा, 'तब तो तुम्हारे घरों में चूहे और जंगलों में कउये होंगे ही नहीं।'

बाक़ी लड़के भी वार्तालाप में भाग लेने लगे।

एक हिन्दू बालक बोला, 'चूहे तो बहुत हैं, पर जंगलों में कउये बहुत नहीं हैं।'

मुझे झांसी ज़िले के कउओं की याद आ गई। कुवांर के महीने में नगरों और क़स्बों में तो इनकी कांव कांव के मारे नाकोंदम आ ही जाता है, जंगलों में इनके झुण्डों के मारे सन्ध्या बेसुरे कोलाहल के मारे बेचैन-सी हो जाती है। एक झुण्ड में ही सैकड़ों हज़ारों। बगीचों के फलों और खेतों के अनाज को नष्ट करने में ये तोतों को भी मात देते हैं। मैंने सोचा या तो नानबीरा वाले हमारे यहां पहुँच जायें या हमारे यहां के कउये नानबीरा की ओर पधार जायें तो निष्कृति मिले। परन्तु इस प्रकार तो समस्या हल होती नहीं।

रात के जागे और दिन के थके थे इसलिये रात भर मजे में सोये।

सवेरे लगभग सौ गोंड, कोल और बैगा हम लोगों के पास आ गये। शिकार उनका जीवन और मनोरंजन है। खेती कम और जङ्गल अधिक सहारा है।

उनके केश सुन्दर और कंघी किये हुये। शरीर दृढ़, मांसल—रग पट्ठे वाले—और चिकने। छोटी धोती, लंगोट या जांघिया कसे हुये। किसी किसी के हाथ में चांदी के चूड़े। अधिकांश तीर कमान लिये हुये। बहुतेरों के कन्धे पर तेज़ धार वाली कुल्हाड़ी,—उसे वे टंगिया कहते थे,—कुछ के हाथ में लाठियां और छोटे बर्छे। उनमें से थोड़े से ढोल और ताशे भी लिये थे।

उनके बीच में एक मटका रक्खा हुआ था। मटके में महुये की शराब थी। वे थोड़ी-थोड़ी चुल्लुओं, पी रहे थे। मेरे मन में आया इनको एक व्याख्यान देकर सुधार की भावना जाग्रत करूँ। तुरन्त मैंने भीतर कुछ टटोला। मैं व्याख्यान देने वाला कौन? यदि इनको अधिक भोजन, अधिक पैसे, अधिक शिक्षा, अधिक कपड़े, दवादारू और अच्छी दिशा दे सकूं तो इनका देशवासी कहलाने की पात्रता रख सकता हूँ नहीं तो वे जैसे हैं मुझसे अच्छें हैं। चेहरे पर सहज मुस्कान है, भाव उनका सीधा सरल निर्भीकता से भरा हुआ है। हम उनसे कुछ ले सकते हैं, दे उन्हें क्या सकते हैं?

सुधार की भावना को ताक में रखकर मैं उनके बीच में पहुँच गया। जाग्रत मानव के सब हर्ष, समग्र ओज उनमें

मौजूद थे—कठिनाइयों और पीड़ाओं, विपत्तियों और दुःखों से लड़ जाने का मनोबल उनमें प्रतीत होता था।

शहर के अधकचरे, अधबुझे हम लोग श्रद्धा के मारे झुक गये।

उनके अगुआ से शिकार के कार्य-क्रम पर बात-चीत होने लगी। उसने हांके के लिये एक विशेष पहाड़ को चुना। आशा की गई कि शेर और भालू मिलेंगे।

हम लोग पहाड़ की ओर चल दिये। लगान लगाने वाले ने बन्दूक़ वालों को यथा स्थान खड़ा कर दिया। मैं अपने एक मित्र के साथ ऐसे स्थान पर खड़ा किया गया जहां महीने-डेढ़ महीने पहले एक अंग्रेज़ स्त्री को शेर ने हांके से निकलकर चबा डाला था। जगह जगह पेड़ों पर मचान बंधे हुये थे। शेर की शिकार का अनुभव नहीं था, इसलिये हम लोग मचान पर नहीं गये, नीचे ही खड़े रहे। पहाड़ की तली में थे। पहाड़ पर से हंकाई होती आ रही थी।

ढोल, ताशों और कई प्रकार के वाद्यों का तुमुल नाद होता चला आ रहा था, हम लोग प्रतीक्षा की धुकधुकी में खड़े थे। अपने अपने स्थानों पर। मेरे अन्य मित्रों की भी यही अवस्था रही होगी।

इस हंकाई में एक सुअर के सिवाय और कुछ नहीं निकला। यह सुअर हमारे लगान के सामने ऊँचाई पर से निकला। 'धाड़ धाड़' हम दोनों ने एक साथ बन्दूकें चलाईं। सुअर के अगले जोड़ पर दोनों गोलियां पड़ीं। दोनों में केवल दो इञ्च का अन्तर था। हांके वाले उत्सुकता के साथ

हम लोगों के पास आये। सुअर को पाकर वे बहुत प्रसन्न हुये।

दूसरी हंकाई के लिये आध मील दूरी पर एक और पहाड़ चुना गया। अबकी वार हम लोग अत्यन्त असावधानी के साथ खड़े हो गये। किसी किसी ने तो केवल पेड़ की ओट ले ली। हम दोनों ने अचार के पत्ते तोड़कर आड़ बना ली—ऐसी कि उसको खरहा भी तोड़ डालता।

हंकाई होने के थोड़े ही समय बाद एक और बन्दूक़ चली, फिर एक और। सामने से दो बड़े रीछ आते हुये दिखलाई पड़े। मेरी बग़ल में कुछ फ़ासले पर एक आया। वहां खड़े हुये शिकारी मित्र ने भालू ख़तम कर दिया। दूसरा हम लोगों के सामने आया। मेरे साथी मित्र की पहली गोली से घायल होकर वह लौटा और वे स्थान छोड़कर उसके पीछे दौड़े। उन्होंने भागते हुये रीछ पर गोलियों की वर्षा कर दी। बारह तेरह चलाई, परन्तु लगी एक भी नहीं। रीछ परेशान होकर एक पेड़ पर चढ़ा।

वह सीधा ही चढ़ा, बड़ी फ़ुर्ती के साथ। लोगों का ख़्याल है कि रीछ उल्टा चढ़ता है। यह ग़लत है। वह उल्टा भी चढ़ सकता होगा, परन्तु साधारणतया चढ़ता सीधा ही है।

मेरे मित्र ने एक गोली और चलाई। रीछ नीचे आ गिरा।

फिर एक हंकाई और हुई। दूसरे दिन भी हँकाइयां हुई, परन्तु मिला कुछ नहीं। हां, रीछों के कुछ अद्भुत क़िस्से अवश्य सुनने को मिले। उनमें से एक विलक्षण था।

एक अंग्रेज़ शेर की शिकार के लिये आया। मचान पर अकेला जा बैठा। नीचे किसी मरे हुये जानवर का गायरा रख लिया था। कुछ रात बीतने पर गायरे के पास एक रीछ आया। रीछ ने गायरे को सूंघा था कि झाड़ी के पीछे छिपे हुये शेर ने रीछ पर तड़प लगाई। रीछ बलबलाता हुआ भागा और पेड़ पर चढ़ गया, और, मचान की ओर बढ़ा जहां अंग्रेज़ शिकारी बैठा हुआ था। मारे डर के अंग्रेज़ की जो हालत हुई होगी उसका तो अनुमान किया जा सकता है, परन्तु ऐसे अप्रत्याशित स्थान पर आदमी को बैठे देखकर रीछ की जो दशा हुई उसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि वह हड़बड़ाकर नीचे जा गिरा। शेर ने उसको समाप्त कर दिया। ऊपर से जो गोली पड़ी तो शेर उससे समाप्त हो गया!

जंगलों में शेर इत्यादि की जो कहानियाँ सुनने को मिलती हैं उनमें से अधिकांश का आधार सत्य होता है, परन्तु कुछ नितान्त कल्पना-प्रसूत होती हैं।

जंगल के रहने वाले लोगों में जितने भालू के नाख़ूनों से घायल होते हैं उतने और किसी से नहीं। इसके नाख़ून पन्जे की गद्दी से बाहर निकले रहते हैं और बहुत लम्बे होते हैं। यह आसानी के साथ पालतू कर लिया जाता है, परन्तु जंगली अवस्था में काफ़ी दुखदायक होता है। शरीर का छोटा, परन्तु बाल बड़े बड़े होने के कारण बिहंगम दिखलाई पड़ता है। जड़ों और फलों का प्रेमी होता है। पेड़ों पर चढ़कर आराम के साथ शहद तोड़ खाता है। मधुमक्खियां उसका कुछ नहीं बिगाड़ पातीं, क्योंकि काटने के प्रयत्नों में उसके बालों में ही

उलझ जाना पड़ता है। उसकी खाल तक उनके डंक पहुँचते ही नहीं। जीभ इसकी खरखरी होती है। किसी की खाल पर जीभ को कस के फेरे तो ख़ून निकल आवे। कुछ लोगों की कल्पना है कि वह हाथों में लपेटकर आदमी से चिपट कर थूक से अन्धा कर देता है और उसका कचूमर निकाल देता है। उसके थूक में ऐसा कोई विष नहीं होता है, और क्रोध में सभी पशु मुंह से झाग फेक उठते हैं। चिपट ज़रूर यह जाता है और नाख़ूनों से बेतरह चीड़फाड़ करता है। इसको सुनाई कम पड़ता है। आंख के ऊपर बालों के लटकने के कारण देख भी अच्छी तरह नहीं पाता। जाड़ों में झोरों और लम्बी घास वाले मैदानों में पड़ा रहता है। जहां कोई असावधान मनुष्य पास तक पहुँचा कि वह जागा और चिपट पड़ा। मनुष्य ने देख नहीं पाया और भालू ने दूर से आहट नहीं ले पाई—फल, भालू का घोर और बिकट आलिङ्गन। यदि उस आलिंगन से प्राण न निकले तो कई सप्ताह अस्पताल का सेवन तो करना ही पड़ता है।

गांवों और नगरों में जिस रीछ का पीछा बच्चे हा हा हू हू करते हुये नहीं अघाते, और वह बिलकुल नहीं चिढ़ता, जंगल का तोहफ़ा होते हुये भी प्रकृति में अपने भाई बन्दों से बिलकुल अलग पड़ जाता है। इतने सीधे जानवर की ऐसी निन्दा! पर वह है यथार्थ।

सोलह—

एक बार विन्ध्यखण्ड के किसी सघन वन का भ्रमण करने के बाद फिर बार बार भ्रमण की लालसा होती है। इसलिये सन् १९३४ के लगभग मैं कुछ मित्रों के साथ मंडला गया।

मंडला की रेल यात्रा स्वयं एक प्रमोद थी। पहाड़ों में होकर रेल घूमती कतरातो गई थी। गहरे गहरे खड्ड, गर्मियों में भी जल भरे नदी नाले और कौतुकों से भरी हुई नर्मदा। मंडला ज़िले में ही तो कान्हाकिसली का विशाल किन्तु वर्जित जंगल है। मंडला ज़िले में हा छोटे से सुन्दर नाम और बड़े दर्शन वाला—मोती नाला है। नाम मोती नाला ही है, परन्तु इस नाम का जंगल बड़ा और विस्तृत, बिहंगम और बीहड़ है। मोती नाला—जंगल में शेर बहुतायत से पाये जाते हैं। मार्ग में जगमण्डल नाम का बड़ा बन मिलता है। सरही और सागौन के भीमकाय वृक्ष भरे पड़े हैं। जल भरे नदी-नालों की कोई कमी नहीं।

जगमण्डल नाम के जंलल में ही शेरों की काफ़ी संख्या है। सांभर, चीतल, बाइसन और भैंसे भी मिलते हैं।

एक दिन तो हम लोग टोहटाप में लगे रहे। जिस नाले में निकल जायें उसी में शेरों के पद-चिह्न। एक नाले में दोनों किनारों से आड़ी पगडण्डियां पड़ गई थीं। वहां पर रेत में शेरों के इतने निशान मिले कि हम लोग अचरज में डूब गये। झांसी ज़िले के नालों में जैसे ढोरों के निशान मिलते हैं वैसे

शेरों के मिले। कुशल यही रही कि नालों की घास में कोई शेर पड़ा हुआ नहीं मिला।

हम लोगों को ठहरने के लिये जंगल विभाग की एक चौकी मिल गई थी। साधन-सम्पन्न लोग जंगलों में डेरे तम्बू लगाते हैं, परन्तु इनकी टीमटाम देखकर अल्प-साधन वाले मनचले शिकारी हतोत्साह हो जाते हैं। वे सोचते हैं न इतना साज सामान होगा न बड़े जंगलों का भ्रमण और न बड़े जानवरों का शिकार उपलब्ध होगा। मैं भी नहीं जा सकता था, परन्तु मेरे एक निकट सम्बन्धी इन ज़िलों में बड़े पद पर थे, इसलिये एक दरी और एक चादर लेकर झांसी से बाहर निकल पड़ता था। उनका निषेध है इसलिये नाम लेकर कृतज्ञताज्ञापन तक से विवश हूँ।

दूसरे दिन दुपहरी में भटक भटकाकर हम लोग डेरे पर आ गये। साथ में मंडला से आटा ले आये थे, क्योंकि इस ओर गांवों में दाल चावल और मिर्च मसाला तो मिल जाता हैं, परन्तु आटा दुर्लभ है। भोजन शुरू ही किया था कि एक गोंड ने आकर समाचार दिया, 'नाहर ने गायरा किया है'—उसकी बोली में—नाहर गायरा किहिस।

पत्तल छोड़कर हम लोग उठ बैठे। उस समय तीन बजे होंगे। मचान बांधने का सामान, रस्से इत्यादि पानी का घड़ा और बिस्तर साथ लिये और चल दिये।

एक नाले में रांझ के नीचे एक बड़ा बैल दबा पड़ा था। उस बैल की कहानी कष्टपूर्ण थी। उस जंगल में रेलवे लाइन पर बिछाये जाने वाले शहतीर—स्लीपर—काटे जा रहे थे

और जबलपुर के लिये ढोये जा रहे थे। जबलपुर से एक गाड़ी वाला शहतीरों को ढोने के लिये अपनी गाड़ी लाया। शहतीरों तक नहीं जा पाया था, मार्ग में एक पानी वाला नाला मिला। गाड़ी वाले ने बैल ढील दिये, पुल के नीचे एक चट्टान पर खाना बनाने लगा। बैल ज़रा भटककर डांग में चले गये। उनमें से एक को शेर ने मार डाला। उसको शेर उठाकर लगभग तीन फर्लांग की दूरी पर ले गया और झांस के नीचे एक छोटे से नाले में दाब दिया। उस समय उसने बैल को बिलकुल नहीं खाया। सोचा होगा रात आने पर सुभीते में खायेंगे।

बैल को नाले में से निकलवाया। छैः आदमी उसको बाहर निकाल सके। लगभग साठ डग पर एक ऊँचा बरगद का पेड़ था। नीचे ज़रा हटकर अचार और तेंदू के छोटे छोटे गुल्ले थे। इनको साफ़ करवाकर एक पेड़ के ठूंठ को खूंटी का रूप दिया गया। बांस के खपचे निकालकर उनसे बैल को पेड़ के ठूंठ से जकड़कर बांध दिया गया।

मैंने बाँधने वालों से पूछा, 'इन खपचों को तोड़कर शेर बैल को उठा तो नहीं ले जायगा ?' उन लोगों ने तान तानकर खपचों को खींचा और आश्वासन दिया, 'शेर इन खपचों को कैसे भी झटके से नहीं तोड़ सकेगा।'

मेरे सामने से एक बार तेंदुआ रस्सी तोड़कर बकरे को उठा ले गया था। मैं उस जगह उस अनुभव को दुहराना नहीं चाहता था।

गोंड़ों और कोलों के आश्वासन को मैंने मान लिया। उनका तद्विषयक अनुभव काफ़ी था, हम लोगों को उनकी बात पर सन्देह करने के लिये कोई कारण न था।

उस रात चैत की पूर्णिमा थी। दिन में गर्मी रही, परन्तु रात का सलोना सुहावनापन तो अनुभव के ही योग्य था। चारों ओर से महक भरे मन्द झकोरे आ रहे थे। कहीं से चीतल की कूक और कहीं से सांभर की रेक सुनाई पड़ रही थी। स्यार भी कभी फे कर जाता था।

हमारा मचान भूमि से लगभग पच्चीस फीट की उँचाई पर था। मचान लम्बा-चौड़ा था, सीधे डंडों से पुरा हुआ। ऊपर गद्दा और दरी। एक ओर डालों के तिफंसे में जल भरा घड़ा और कटोरा रक्खा था। मचान एक ओर से खुला हुआ था और तीन ओर से पत्तों से आच्छादित। उस पर केवल रीछ चढ़कर आ सकता था, शायद तेंदुआ भी,—क्योंकि मैंने तेंदुये को अपनी आंखों पेड़ पर सहजगति से चढ़ते देखा है,—परन्तु शेर चढ़कर नहीं आ सकता था। मचान के सिरहाने की तरफ़ मैं बैठा था, दूसरी ओर मेरे मित्र शर्मा जी। मेरे सामने का भाग ज्यादा खुला था, शर्मा जी के सामने का कम।

मेरे अन्य मित्र काफ़ी दूर अन्य मचानों पर थे।

आठ बज गये। चांदनी खूब छिटक आई। मेरे सामने सौ गज़ तक खुला हुआ मैदान था, फिर घनी झाड़ी शुरू हुई थी।

आठ बजे के उपरान्त इस खुले हुये मैदान में लगभग अस्सी गज़ की दूरी पर एक सफ़ेद सफ़ेद-सा ढेर दिखलाई

पड़ा। मैंने आंखों को गड़ाया। वह ढेर स्थिर था। सोचा आंखों का भ्रम है। कुछ मिनट बाद वह ढेर हिला और मचान की ओर थोड़ा-सा बढ़ा। विश्वास हो गया कि शेर है और बन्दूक़ का अनी पर आ रहा है। मैने शर्मा जी को इशारा किया। उन्होंने भी अपने झांके में होकर देखा। वह लगभग आध घण्टे तक, ठिठुरता ठिठुरता-सा चला। फिर उसने उस नाले पर छलांग भरी जिसमें वह दिन में मारे हुये बैल को ठूंस आया था। इसके उपरान्त वह दृष्टि से लोप हो गया। बाट जोहते जोहते ग्यारह बज गये। चांदनी निखर कर छिटक गई थी। ठण्डी ठण्डी हवा चल रही थी। शर्मा जी ने सिर और आंखों पर हाथ फेर कर नींद की विवशता प्रकट की। मेरे भी सिर में दर्द था। हम दोनों लेट गये। मैंने सोचा, गायरा प्रबल खपचों से बँधा हुआ है, शेर आकर जब बैल को उठाने का उत्कट प्रयत्न करेगा हम लोग सोते ही न पड़े रहेंगे। लेटते ही सो गये, क्योंकि मचान पर किसी विशेष संकट की आशंका न थी।

चांदनी ठीक ऊपर चढ़कर थोड़ी-सी वक्र हो गई थी। एक बजा था जब मुझको पेड़ के नीचे कुछ आहट मालूम पड़ी। मैं यकायक उठकर नहीं बैठा। मचान पर का ज़रा-सा भी शब्द सुनकर, यदि शेर होगा तो, फिर नहीं आयेगा—शायद महीने पन्द्रह दिन तक न आवे, क्योंकि शेर तेंदुये की तरह ढीठ नहीं होता। मैं बहुत धीरे धीरे उठा। आंखें मल कर मचान के नीचे झाँका। कोई दो छोटे जानवर बरगद की सूखी पत्तियों को रोंद रोंदकर बैल की घात लगा रहे थे।

बैल को भी देखा--सन्देह था कहीं उस समय शेर उसको न घसीट ले गया हो जब सो रहे थे। बैल समूचा पड़ा था। शेर उसके पास नहीं आया था।

मैं कुछ क्षण ही इस तरह बैठा था कि सामने से शेर आता दिखलाई पड़ा। शेर के आने के पहले ही वे दोनों जानवर भाग गये। मैं जब लेटा था, मैंने अपनी राइफिल का तकिया बनाया था। शर्मा जी दुनाली बन्दूक़ छाती पर रक्खे हुये सो रहे थे। मैं राइफिल को उठाने के लिये मुड़ नहीं सकता था। मुड़ते ही मेरी गति को शेर देख लेता और भाग जाता, सारी कमी कमाई मिहनत और लालसा व्यर्थ जाती। मैंने शर्माजी की छाती पर से धीरे से दुनाली उठा ली। उनके जगाने का समय तो था ही नहीं। बन्दूक़ के घोड़े चढ़े हुये थे और नालों में गोलियों के कार्तूस पड़े थे। परन्तु मुझे अपनी राइफिल का अधिक भरोसा रहा है—लेकिन, उस मौक़े पर राइफिल उठाना मेरे लिये सँभव न था। दुनाली लेकर मैंने बैल पर सीधी करली, झुक गया और एकाग्र दृष्टि से अपनी ओर आते हुये शेर को देखने लगा।

शेर बड़ी मस्त चाल से आ रहा था। बग़ल की पहाड़ी पर पतोखी बोली। अलसाते अलसाते उठाते हुये अपने भारी पैरों को शेर ने एकदम सिकोड़ा, बिजली की तरह गर्दन मरोड़ी पीछे के पैरों पर सधा और जिस ओर से चिड़ियां बोली थीं एकटक देखने लगा। जब वह उस ओर से निश्चिन्त हो गया तब मचान की ओर बढ़ा।

खरी चांदनी में उसकी छोहें स्पष्ट दिख रही थीं। माथे पर सफेद भाल और छपके चमक रहे थे। भारी भरकम सिर की बग़लों में छोटे छोटे कान विलक्षण जान पड़ते थे। शेर ज़रा सा मुड़ा, तब उसके भयंकर पंजे और भयानक बाहु और कन्धे दिखलाई पड़े। गर्दन ज़बरदस्त मोटी और सिर से पीठ तक ढालू। उसके पट्ठों को देखकर मन पर आतंक सा छा गया। सोचा यदि बड़े से बड़ा खिसारा सुअर इससे भिड़जाय तो कितनी देर ठहरेगा ? परन्तु सुअर इससे भिड़ जाता है और देर तक सामना भी करता है।

शेर फिर मचान के सामने सीधा हुआ। उसने मेरी ओर गर्दन उठाई। चन्द्रमा के प्रकाश में उसकी आंखें जल रही थीं। वह टकटकी लगाकर मेरी ओर देखने लगा—और मैं तो आंख गड़ाकर उसकी ओर पहले से ही देख रहा था। एक क्षण के लिये मनचाहा कि गोली छोड़ दूँ, परन्तु जंगल का शेर—और इतना बड़ा—जीवन में पहली बार देखा था, इसलिये उसको देखते रहने की लालच उमड़ी। कभी उसके सिर और कभी उसकी छाती को देखता था। ऐसी चौड़ी छाती जैसी किसी भी जानवर की न होती होगी।

शेर कई पल मेरी ओर देखता रहा। उसको सन्देह था। वह जानना चाहता था कि मैं हूँ कौन ? पर मैं अडिग और अटल था। उसको बाल बराबर भी हिलता नहीं दिखा। जब शेर मेरा निरीक्षण कर चुका तब बैल के पास गया। उसने अपना भारी जबड़ा बैल के ऊपर रक्खा और दाढ़ें गड़ाकर एक झटका दिया। एक ही झटके में कई आदमियों के बांधे

हुये बांस के खपचे तड़ाक से टूट गये। दूसरी बार मुंह डाल कर जो उसने झटका दिया तो बैल तीन चार हाथ की दूरी पर जा गिरा! इस समय उसकी पीठ मेरी ओर थी। उसने बैल को एक और झटका दिया, बैल चार पांच डग पर जाकर गिरा। मुझको लगा अब यह चला। सबेरे जब मित्रगण इकट्ठे होंगे तब मेरी इस बात को कोई न सुनेगा कि मैं शेर की लोचों का अध्ययन कर रहा था—सब कहेंगे कि मैं डर गया। मैं मनाने लगा किसी तरह यह मेरे सामने अपनी छाती फेरे।

शेर ने कुछ क्षण के लिये मेरे सामने अपनी छाती की। बन्दूक़ तो मिली हुई हाथ में थी ही। मैंने गोली छोड़ी। शेर ने काफ़ी ऊँची उछाल लेकर गर्जन किया। शर्मा जी जाग उठे, उन्होंने भी सुना और देखा।

शेर ने नीचे गिरकर तुरन्त एक तिरछी उचाट ली और आंख से ओझल हो गया।

उसी समय मचान से उतरकर अनुसन्धान करने का सवाल ही न था, क्योंकि कुछ पहले इसी प्रकार का प्रयत्न करते हुये इलाहाबाद के एक अंग्रेज़ वकील,—श्री डिलन, फाड़ डाले गये थे; और जैसा कि दो दिन बाद मंडला पहुँच कर हम लोगों ने सुना कलकत्ता हाईकोर्ट के जज श्री चौधरी के भाई—जो वकील थे—इसी जंगल से कुछ मील दूर, इसी रात, इसी प्रकार के प्रयत्न में मार डाले गये थे।

हम लोग मचान से नहीं उतरे। बातें करते-करते सवेरा हो गया। हम लोगों के मचान से उतरने के पहले ही मित्र लोग वहां आ गये। आते ही उन्होंने भूमि का निरीक्षण

किया। जहां गोली चली थी वहां खून की एक बूंद भी न थी।

एक साहब बोले, 'गोली चूक गई।'

मैंने कहा, 'असंभव।'

नीचे उतरकर देखा, शेर के खून की बूंदें मिलीं। ज़रा आगे बढ़े कि हड्डी के टुकड़े और आगे बढ़े तो खून की धार। परन्तु हड्डियों के टुकड़े और रक्त की धार लगभग आध मील तक मिली। एक नाले में उसने पानी पिया और नाले के उस पार के जंगल में की लम्बी घनी घास में विलीन हो गया। कई दिन बाद उसकी लाश सड़ी हुई मिली। गोली हँसुली की हड्डी पर पड़ी थी। चोट करारी थी, परन्तु फिर भी वह इतनी दूर निकल गया।

दूसरे दिन उसी मरे बैल के गायरे को बांधकर शर्मा जी और मैं बरगद के मचान पर जा बैठे। रात भर जागते रहे, लेकिन मचान तले कोई भी नहीं आया। परन्तु अन्य मित्रों को विचित्र अनुभव प्राप्त हुये।

एक मित्र मचान बांधकर पानी के पोखरे के पास बैठे थे। शुद्ध चांदनी रात थी। खूब दिखलाई पड़ता था। पोखरे पर पहले दो बाइसन आये। बाइसन के मारने की मनाई थी इसलिये गोली नहीं चलाई गई। उनके उपरान्त एक शेर आया। मित्र को सिगरिट पीने की थी आदत। इधर सिगरिट ने खांसी पैदा की उधर शेर छलांग भरकर ओझल हो गया।

दूसरे मित्र भी एक सज्जन के साथ मचान पर बैठे थे, और यह मचान मैंने ही बँधवाया था। मचान एक गहरे और

शेरनी अपने बच्चों के साथ

चौड़े नाले के किनारे के एक पेड़ पर था। नाले में पानी न था परन्तु जानवरों के निकलने का उधर होकर मार्ग था।

जब मैं नाले में खड़ा हुआ तब वह पेड़ बहुत काफ़ी ऊँचा दिखलाई दिया। मैंने सोचा इस पर का मचान बिलकुल सुरक्षित रहेगा। पर वह पेड़ किनारे के धरातल से केवल दस ग्यारह फ़ीट ही ऊँचा था!

दिन में मचान बांधे जाने के बाद हम लोग सब अपनी-अपनी जगह जा बैठे। जब सवेरे सब लोग मिले नाले की ढी वाले मचान के शिकारियों का अनुभव सुनकर हम सब को दंग रह जाना पड़ा। उन्होंने बतलाया :—

'नौ बजे के लगभग मचान के पास गुरगुराने की आहट मिली। हम लोग सावधान होकर उस दिशा की ओर देखने लगे जहां से गुरगुराहट सुनाई पड़ी थी। कुछ ही क्षण बाद एक बड़ी शेरिनी अपने दो बच्चों के साथ, धीरे धीरे, झूमती-झूमती, मचान के नीचे आई। बच्चे कलोल में थे और गुरगुरा रहे थे। शेरिनी मचान के नीचे बैठ गई। वह ज़रा सी उछाल लेकर मचान पर बैठे हुये शिकारियों को नीचे पकड़ ला सकती थी। शेरिनी के बच्चे कभी आपस में उलझते और लिपटते और कभी शेरिनी के भारी शरीर को अपने खेल कूद का अखाड़ा बनाते। जब दूरी से चीतल या सांभर की आवाज़ आती तो शेरिनी अपने पंजे की मुलायम गद्दी से बच्चों को चुपका कर देती और जबड़े को ज़िमीन से सटाकर ध्यान के साथ कुछ सुनती और देखती। चंचल बच्चे जब उसकी गहरी बग़लों में से, उतावले होकर, जंगल के जगत का कारबार

समझने के लिये सिर उठाते वह पन्जे की गद्दीदार ठोकर से उनको बुद्धि देने का प्रयास करती। एक बार एक बच्चा कूदने-फांदने के लिये विकल हो गया तो शेरिनी ने हलकी सी चपत जमा दी। चपत ने उस बच्चे को कुछ समझदारी दी और वह कुनमुनाकर अपनी मां की बग़ल में सट गया। थोड़ी देर में नाले के उस पार पेड़ों की छाया में एक बड़ा आकार आया, समझ में नहीं आया क्या था। शेरिनी उस आकार को देखकर फरफराकर खड़ी हो गई और उसने अपने गले में जिस स्वर को दबाकर नाक से निकाला वह बहुत दूर से सुनाई पड़ने वाली भूकम्प की सी आवाज़ थी। मचान पर बैठे एक शिकारी ने बन्दूक़ पर उंगली पसारी। दूसरे शिकारी ने हाथ पकड़ लिया। बिलकुल संभव यह था कि शेरिनी केवल घायल होती, और निश्चित यह था कि वह घायल होकर मचान वाले किसी भी शिकारी को न छोड़ती।

मचान बँधवाने के समय मेरे मन में पेड़ की उँचाई के विषय में, नाले की गहराई में खड़े रहने के कारण भ्रम हो गया था। वैसे वह मचान तो तेंदुये की भी शिकार के योग्य न था।

बारह फ़ीट की ऊँचाई वाले मचान से तो एक बार नया-गांव छावनी के पास तिंदरी पहाड़ी के नीचे एक पेड़ पर मचान बाँधकर बैठे हुये शिकारी को घायल होते ही तेंदुये ने उछल-कर नीचे पटक लिया था और शिकारी के टुकड़े टुकड़े कर डाले थे। फिर शेर के लिये यह मचान केवल दस ग्यारह फ़ीट की ही ऊँचाई पर था। बन्दूक़ चल जाती तो ग़ज़ब हो जाता।

एक चौथा मचान और था। उस मचान को एक बिलकुल बेढंगी सुनसान जगह में बांधने की सूझ शिकारी को उनकी झक ने दी थी। शिकारी बिलकुल अकेले, बहुत दूर और बिलकुल बीहड़ झाड़ी में बैठना चाहते थे, शेर वहां आये चाहे न आये।

शेर तो क्या उनके मचान के पास एक चूहा भी नहीं आया। लाल आखों सवेरा हुआ।

इसके बाद मैं अनेक बार अमरकण्टक पहाड़ पर शेर के लिये गया। अमरकंटक पहाड़ की पठार के समतल पर एक छोटा सा खेत है। उसकी पश्चिमी दरार आगे चलकर नर्मदा बनी है और पूर्व वाली सोन। मजे में अपने दोनों पैर दोनों दरारों पर रक्खे जा सकते हैं परन्तु कुछ मील जाकर उस पठार पर से दोनों के भयंकर प्रपात हैं। अमरकंटक पर कुछ पेड़ ऐसे मिले जिनके पत्तों से जून के महीने में रात्रि के समय बारीक फुहार झरती थी। वहीं मलिनियां नाम की एक बेल देखी जिसमें लाल-लाल छोटे-छोटे फल लगे थे। हम लोगों ने फल चक्खे, स्वादिष्ट लगे। ग्रीष्म ऋतु में बघेलखण्ड के अनेक किसान अपने ढोर अमरकण्टक की पठार पर चराने के लिये ले आते हैं। इनके ढारों की टोह में शेर भी सिमटकर पठार पर आ जाते हैं।

पठार प्रकृति के सौन्दर्य का कोष है। उन दिनों जंगल में फूलों से लदे जूही के पेड़ मैंने विन्ध्यखण्ड के इसी स्थान में देखें। घूमते घूमते एक स्थल पर पहुँचे जिसको सूमपानी कहते थे। सूमपानी शायद इसलिये कि पानी पहाड़ में से थोड़ा-थोड़ा

करके रिसता था। इस पानी के आगे पहाड़ की एक घूम थी और मार्ग सकरा। नीचे बड़ा भारी खड्ड। हम लोग घूम के इस सिरे पर थे, दूसरे सिरे पर कोमल कण्ठ निसृत एक सामूहिक गान सुनाई पड़ा। ऐसे घने बीहड़ जंगल में यह सुरीला गान कहां से आया ? थोड़ा आगे बढ़े तो जंगल की कुछ स्त्रियां और कन्यायें रंग-बिरंगे फूलों से अपने केश सजाये डलियां बगल में दाबे—फटे कपड़े पहिने—आ रही थीं। हम लोगों को देखकर वे संकोच में मुस्कराईं और गाना बन्द कर दिया। हम लोग आगे बढ़ गये। मेरे मनमें एक टीस उठी—हमारे देश की सुन्दरता और संस्कृति ऐसी दरिद्रता में सनी हुई है !

जब पठार पर पहुँचकर नर्मदा के प्रपात को देखने गये, ऊपर की ओर बग़ल में एक छोटा सा बंगला देखा। उसमें शायद कोई सन्यासी या प्रवासी रहते थे। सन्यासी का अनुमान इसलिये करता हूँ कि उसमें से वन कन्या या देवकन्या के समान सौन्दर्य वाली एक युवती निकली जो गेरुये वस्त्र धारण किये हुये थी और चौड़े मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड लगाये हुये थी। यदि जीवन रोमान्स है,—मुझे तो बहुलता के साथ मिला है,—तो उस कुटी में अवश्य था।

प्रपात के नीचे हम लोग नहाने को उतरे। स्नान से निवृत्त हुये थे कि समाचार देने वाले ने सूचना दी, 'नाहर ने गायरा किया है।' जेबों में गुड़ और भुने हुये चने डाले और रास्ते में खाते पीते, पहाड़ के उतार-चढ़ाव को नापते हुये सूर्यास्त के पहले ५ मील की दूरी तै करके गायरे के पास पहुँच

गये। एक खड्ड के ऊपर बड़ा पेड़ था। उस पर कलमुँहे बन्दर बहुत चीं चिख कर रहे थे। ज़रूर शेर वहीं कहीं छिपा होगा, हम लोगों ने निष्कर्ष निकाला। पास ही एक मारे गये भैंसे का गायरा पड़ा था।

शेर, जानवर की गर्दन ऊपर से पकड़ता है और तेंदुआ नीचे से। भैंसे की गर्दन पर ऊपर से दाढ़ों को फांस पड़ी थी। निश्चय ही उसको शेर ने मारा था।

परन्तु मचान बनाने मे इतना हो हल्ला हुआ कि शेर नहीं आया। रात भर आंखें गड़ाये रहे, लेकिन सिवाय एक रीछ के और मचान के पास कोई जानवर नहीं निकला।

शेर के लिये मैंने हुशंगाबाद के भी कुछ जंगलों को छाना है। जंगलों की विशालता और महानता तो देखने को मिली, परन्तु शेर नहीं मिला। एक स्थान पर गायरे की खबर पाकर गये। शेर ने गाय मार डाली थी। एक ऊँचा मचान बनाया। चारों ओर से उसको ढांका। सूर्यास्त के पहले ही मचान पर आसन जमा ली। परन्तु ठीक समय न जाने कहीं से असंख्य चीटे आ गये। आफ़त हो गई। बड़ी कठिनाई के साथ उनसे पार पा रहे थे कि पगडण्डी पर नाहरनी आती हुई दिखाई दी। मण्डला ज़िले में जो शेर देखा था उससे छोटी थी, परन्तु उससे कहीं अधिक लचीली और फुर्तीली। मै चींटा युद्ध में व्यस्त था। मचान थोड़ा थोड़ा हिल रहा था। नाहरनी ने देख लिया और वह तुरन्त चल दी। एक बार अपने ज़िले की हद से जरा हटकर हम लोग शिकार खेलने के लिये गये। सन्ध्या के समय एक टिये के लिये जा रहे थे कि बग़ल की

छोटी सी झाड़ी में नाहर दिखलाई पड़ा। गोल बांधकर हम लोग उसके पीछे पड़ गये। भाग्य की बात कि वह हम लोगों से अधिक बुद्धिमान था, वह भाग गया और हम लोग अपने सिर चिथवाने से बच गये।

टिये के लिये आगे बढ़े। बादल घिर आये और इतनी ज़ोर का पानी बरसा कि शिकार-विकार सब भूल गये। कपड़े, बिस्तर हथियार सब बिलकुल जलमग्न हो गये। जब ठौर पर पहुँचे घंटों कपड़ों के सुखाने में लग गये। दो बजे रात को कुछ भोजन मिला और तीन बजे थोड़ी सी नीद। सवेरे एक गप्पी ने शिकार के बड़े बड़े सब्ज़बाग़ दिखलाये। कमबख़्ती के मारे ऊँट चढ़े कुत्ते काटते हैं। दो दिन पहाड़ों में मारे मारे फिरे, भूखे-प्यासे, कुछ भी न मिला—मिला क्या दिखा तक नहीं। परन्तु मसख़रे साथी संग में थे, इसलिये भूख प्यास, भटक—और वह कठोर वर्षा—एक भी नहीं अखरी। जब लौटकर झांसी आया, तब मालूम हुआ श्री बद्रीनाथ भट्ट आये हुये हैं। भट्ट जी पुराने मित्र थे, उन दिनों अस्वस्थ थे। जलवायु परिवर्तन के लिये आये थे। झांसी से दो मील दूर मैंने एक कृषि फ़ार्म बनाया था और एक मकान खड़ा कर लिया था। एकान्त स्थान और जलवायु अच्छा। भट्ट जी वहीं ठहर गये।

मुझसे बोले, 'लोग कहते हैं कि हिन्दी के लेखक होकर आप शिकार खेलते हैं।'

मैंने कहा, 'लोगों का आरोप ठीक ही होगा, क्योंकि हिन्दी के लेखक सिवाय धर्म और नीति के और किसी विषय पर लिखते ही कहां हैं?'

भट्ट जी बिकट दुखदर्द में भी हँसने-हँसाने में सचेष्ट रहते थे।

उन्होंने कहा, 'देखिये, हिन्दी का लेखक उसको कहना चाहिये जो सदा सिर झुकाकर चले, इधर उधर कुछ न देखे। और, बाज़ार में जब कोई सौदा लेने जाय तब चार पैसे की चीज़ के चार आने देकर घर आवे।'

मैंने भट्ट जी को इस बार की अपनी शिकार यात्रा का विवरण सुनाया। उसमें मनोरंजन के लिये कोई सामग्री न थी, केवल पैर तोड़ने वाली यात्रा के क्रम थे।

उस दिन की कठोर वर्षा के दुःख को तो मैं जल्दी भूल गया, परन्तु उससे लड़ने में जो प्रयत्न किया था, वह सदा याद रहा।

सत्रह—

जंगली कुत्ते का मैंने शिकार तो नहीं किया है, परन्तु उसको देखा है। जिन्होंने इसके कृत्यों को देखा है वे इस छोटे से जानवर के नाम पर दांतों तले उँगली दबाते हैं।

रंग इसका गहरा बादामी होता है, इसीलिये शायद इसको सुना कुत्ता कहते हैं।

अकेला-दुकेला सुना कुत्ता कुछ नहीं कर सकता, परन्तु यह चालीस-पचास से भी अधिक संख्या के झुण्ड में रहता है। और जानवर तो रात में शिकार खेलते हैं, यह दिन में ही बंटाढार करता है। जिस जंगल में सुना कुत्तों का झुण्ड पहुँच जाता है उस जगल के जानवरों का या तो सर्वनाश हो जाता है या वे ठौर छोड़कर दूर जंगलों में चले जाते हैं। यहां तक कि शेर भी उस जंगल को छोड़कर अन्यत्र चल खड़ा होता है। जब शेर के लिये खाने को जंगल में कुछ नहीं रहता तब उसको विवश होकर निर्वासन स्वीकार करना पड़ता है। केवल भोजन की अप्राप्यता ही शेर के कष्ट का कारण नहीं है, सुना कुत्ता शेर को घेर कर मार भी डालता है। इसलिये शेर इस शैतानी झुण्ड से बहुत डरता है।

अन्य जानवरों की तरह सुना कुत्तों के झुण्ड का भी अगुआ होता है। इनमें जासूस, हरावल नायक, पहरे वाले इत्यादि सभी होते हैं। सुना कुत्ते मनुष्य से भी नहीं डरते, परन्तु वे मनुष्य पर वार तब करते हैं जब उनको जानवर

खाने को नहीं मिलते या जब उनके पास एक दूसरे को खा जाने का सुभीता नहीं रहता।

इनका जासूस—स्काउट—भोज्य पदार्थ की ख़बर देता है। सारा झुण्ड अंगड़ाई लेकर खड़ा हो जाता है। फुरेरू ली, धरती खोदकर नाखून तेज़ किये, जबड़े समेट कर दांत पीसे और सब के सब चल दिये।

परन्तु वे जानवर पर अन्धाधुन्ध धावा नहीं बोलते। उनकी योजना किसी भी चतुर सेनापति की दक्षता को चुनौती देने वाली होती है।

पहले उनका जासूस सांभर, चीतल, रोज, गुरायं इत्यादि जानवरों के झुण्ड को दूर से दिखला देता है, फिर मुखिया जासूस को साथ लेकर चारों ओर चक्कर काटकर मार्के के स्थान देखता है। इसके बाद मुखिया अपने सारे दल को टुकड़ियों में बांट कर मोर्चाबन्दी करता है। मोर्चे चारों ओर से बांध लिये जाते हैं। महत्व का कोई भी स्थान सम्भावना के लिये नहीं छोड़ा जाता।

इतना कर लेने के उपरान्त मुखिया कूका देकर मानो आक्रमण करने की बिगुल बजाता है।

घिरा हुआ जानवर चौंककर इधर उधर देखता है। दिखलाई कुछ नहीं पड़ता। कूके सुनाई पड़ते हैं। घेरा संकीर्ण होता चला जाता है। जैसे ही जानवर ने निकल भागने के लिये उछल-कूद की कि सुना कुत्तों का एक दल आ चिपटा; बाक़ी सेना भी आई और कुछ क्षणों में ही जानवर साफ़।

सुना कुत्ते शेर को भी घेरकर, सताकर और थकाकर मार डालते हैं। शेर को ये दिन-रात चैन नहीं लेने देते। नोचते-काटते रहते हैं, वह खिसिया-खिसियाकर इन पर झपटता है, पर ये हाथ नहीं आते। अन्त में थका मांदा, भूखा प्यासा और उसनीदा शेर मारा जाता है और ये उसको चट कर जाते हैं।

इसकी शिकार के लिये काफ़ी सावधानी की ज़रूरत है। कांटों की घनी बिरवाई करके देखने और बन्दूक़ चलाने के लिये उसमें कई ओर छेद कर लिये जाते हैं। शिकारी महुआ, अचार या बांस के पत्ते की कोमल कोंप को ओठों में दबाकर सांभल चीतल के त्रस्त बच्चे की रुलाई या पुकार का अनुकरण करता है। उस शब्द पर कूके लगाते हुये और घेरा डालते हुये सुना कुत्ते आ जाते हैं। पास आते ही तुरन्त छर्रे के कार्तूस चलाने की आवश्यकता है। जैसे ही एक दो मरे या घायल हुये कि बाक़ी उन पर टूट पड़ते हैं और खाने में संलग्न हो जाते हैं। उसी समय झुण्ड पर लगातार छर्रे की वर्षा करनी अनिवार्य है। जब झुण्ड इस छिपी बला से अपनी संख्या को काफ़ी घटा हुआ देखता है तब भागता है। ऐसी परिस्थिति में शिकारी सुरक्षित है।

सुना कुत्ते के नाश के लिये विविध प्रान्तों में विविध प्रकार के पुरस्कार नियुक्त हैं। वैसे रक्षित जंगलों में बिना अनुमति के शिकार नहीं खेली जा सकती, परन्तु सुना कुत्तों को मारने के लिये कोई शिकारी रक्षित वन में घुस सकता है और उनको मार कर पुरस्कार पा सकता है।

सुना कुत्तो की भूख मानो एक दहकता हुआ अग्निकुण्ड है। खाता चला जायगा और फिर भी अतृप्त रहेगा। इसकी भूख की कुछ तुलना भेड़िये की भूख से की जा सकती है। परन्तु न तो उसका झुण्ड इतना बड़ा होता है और न इतना भयानक।

अट्ठारह—

भेड़िया आबादी के निकट के प्रत्येक जंगल में पाया जाता है। यह जोड़ी से तो रहता ही है, इसके झुण्ड भी देखे गये हैं। मैंने आठ आठ दस दस तक का झुण्ड देखा है।

भेड़िया बहुत चालाक होता है। भेड़-बकरियों और बच्छे बछियों का तो यह शत्रु होता ही है मनुष्य के बच्चों को भी उठा ले जाता है। किसान स्त्रियां खेतों में काम करने के समय झोपड़ों में बच्चों को छोड़ जाती हैं। भेड़िया मौक़ा पाकर उनको उठा ले जाता है। जब वे साथ में बच्चों को डलियों में रखकर ले जाती हैं और मेंड़ पर, पेड़ के नीचे, बच्चों को छोड़ जाती हैं तब लौटने पर डलियों को ख़ाली पाती हैं। मालूम हो जाता है कि भेड़िया उठा ले गया।

यह गड़रियों के छप्पर फाड़कर भेड़ बकरों को दाब ले जाता है। इतना ही होता तो भी कोई बात थी, परन्तु दस पाच को तो वहीं मार कर डाल जाता है। मैंने झांसी के पास के ही एक गांव में कुछ समय हुआ तब देखा था।

भेड़ बकरी वाला इतना तेंदुये से नहीं डरता जितना भेड़िये से। और ठीक भी है। वह उतना खाता नहीं जितना नाश करता है।

भेड़ बकरियों के चरते हुये बगर में से एकाध का मुँह में दाबकर उठा ले जाना साधारण बात है परन्तु कभी कभी दो भेड़िये एक बकरी को कान पकड़कर भगा ले जाते हैं। एक कान को एक भेड़िया मुँह में दाबता है और दूसरे

को दूसरा। बकरी बिचारी गुमसुम घिसटती हुई चली जाती है।

भेड़िया खिलाड़ी जानवर है। कभी कभी मनुष्य के बच्चों को पाल भी लेता है।

भेड़िये का पाला हुआ एक बच्चा मैंने स्वयं देखा है। यह भेड़िनी के साथ ओर्छे के जंगल में कोहनियों के बल फिर रहा था। एक तांगे वाले को मिला। भेड़िनी को तांगे वाले ने पत्थरों की मार से भगा दिया और बच्चे को पकड़ लिया। तांगे वाला इस बच्चे को तांगे पर बिठलाकर घुमाता रहता था। बच्चा कच्चा गोश्त खाता था। न तो वह किसी प्रकार की मानव भाषा बोल सकता था और न समझ सकता था।

इस बच्चे को पकड़े हुये तांगे वाले को थोड़े ही दिन हुये थे कि अकस्मात यह तांगा मुझको बैठने के लिये मिल गया। वह बच्चा तांगे में बैठा था। बिलकुल नग-धड़ंग। लगभग ७, ८ वर्ष का होगा। जाड़े के दिन थे। मैंने तांगे वाले को डांटा।

'बच्चे को ऐसा उघाड़ा क्यों लिये फिरते हो? ठण्ड लग जायगी, मर जायगा।'

तांगे वाले ने उत्तर दिया, 'यह कपड़ा पहिनता ही नहीं। एक कुर्ता पहिनाया तो इसने दांतों और हाथों फाड़-फूड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।'

फिर उसने भेड़िनी से बच्चे को छुटा लाने का ब्योरेवार वर्णन सुनाया।

रात थो मैंने तांगे को सड़क-लैम्प की रोशनी के निकट खड़ा करवाया और बच्चे को बारीकी के साथ देखा। बच्चे

को यह अवलोकन पसन्द नहीं आया। उसने अपने छोटे-छोटे सुन्दर दांत मुझको दिखलाये और आश्वासन देने का प्रयत्न किया कि यदि अवलोकन आगे बढ़ा तो काट खाऊँगा।

उन्हीं दिनों मेरे वर्ग के कुछ लोगों ने झांसी में एक अनाथालय खोला था। सोचा इसको अनाथालय में रख दूं। तांगे वाला तो उस बच्चे से अपने पिंड छुड़ाना ही चाहता था, मैंने बच्चे को अनाथालय में रख दिया। मैं हफ़्ते में कई बार इसको देखने के लिये जाता था। इस बच्चे को अंधेरी और मैली-कुचैली जगह बहुत प्रिय थी। उसको मिट्टी में पड़े रहना और पलोटें लगाना बहुत पसन्द था। कपड़े पहिनना और ओढ़ना तो उसको बहुत कठिनाई से सिखला पाया। उसको कोहनी और घुटने के बल चलना बहुत अच्छा लगता था। अकेले में किलकारियां मारता था। अनाथालय के अन्य बालकों के सामने चीख उठता था।

कई वर्ष तक वह भाषा नहीं सीख सका। अनाथालय में एक बैंड था। बैंड की ध्वनियां उसको अच्छी लगती थीं। वह उनको ध्यानपूर्वक सुनता था, प्रसन्न होता था और कभी कभी किसी किसी ध्वनि की नक़ल भी कर उठता था।

गन्दा इतना रहता था कि कोई भी अन्य बालक उसके पास खड़ा होना तक पसन्द नहीं करता था।

पांच छै: साल बाद इसको कुछ बोलना आया। इतने दिनों में यह कपड़े भी पहिनने लगा था।

पता नहीं यह किस दुःखी माता-पिता का बालक था।

एक भेड़िये की चालाकी मैंने अपनी आंखों देखी है।

एक बार बैलगाड़ी से बाहर गया। लौटते समय सन्ध्या हो गई। सन्ध्या के पहले मैं गाड़ी से उतर पड़ा और गाड़ी के पीछे लगभग दो फर्लांग पर रह गया। देखा कि चलते चलते गाड़ी एक पेड़ के पास ठिठक गई। आसपास खुले हुये खेत थे। न तो कोई डांग बीहड़ और न अन्य पेड़। सड़क के किनारे केवल एक पेड़ था। पास पहुँचा तो उस पेड़ के नीचे एक भेड़िया पड़ा है और गाड़ीवान तथा एक ग्रामीण उसके पास खड़े हैं। उन्होंने भेड़िये पर एक पत्थर फेका था। वे समझते थे भेड़िया मर गया।

जब गाड़ी पेड़ के पास पहुँची थी वह छिपने का यत्न कर रहा था। गाड़ीवान गाड़ी खड़ी करके उतरा। एक पत्थर उठाकर मारा और उस पर दौड़ पड़ा। भेड़िया गिर पड़ा और पृथ्वी पर लम्बायमान हो गया।

उन लोगों ने भेड़िए को उठाकर गाड़ी पर रख लिया और गाड़ी बढ़ाने को हुए। मैं टहलते हुए चलना चाहता था इसलिए गाड़ी के पीछे था।

मुझको विश्वास नहीं था कि भेड़िया मर गया। जब उसको गाड़ी पर रक्खा उसकी सांस नहीं चल रही थी। परन्तु मैंने देखा उसने आँख खोली और मुझको देखते ही तुरन्त झपकी-सी ले ली।

मैंने गाड़ीवान से तुरन्त उसको नीचे डाल देने के लिए कहा। नीचे डालते ही उसने फिर सांस साधी। मैं बन्दूक तैयार लिए उसके सिर पर खड़ा था।

भेड़िये ने थोड़ी देर में सांस ली और आंख खोलकर झटपट बन्द करली। वह भाग निकलने का अवसर ताक रहा था। वह पत्थर की चोट खाकर भाग न सका था। मरने का मिस करके पेड़ के नीचे पड़ गया था। गाड़ी पर पहुँचने और गाड़ी से नीचे डाले जाने के समय भी वह उचाट लेकर भागने का बल प्रतीत नहीं कर रहा था, इसलिए मरने की दशा का बहाना करके चुप्पी साध गया। सोचता होगा कि अकेला रह जाऊँ तो फिर अपने झुण्ड में जा मिलूँगा।

जैसे ही उसने दुबारा आंख खोली मैंने उसको समाप्त कर दिया और गाड़ीवान से कहा, 'अब ले जाओ और इनाम के दस रुपये कमालो।'

गाड़ीवान दूसरे दिन भेड़िए की खाल कचहरी में ले गया। दस रुपये इनाम के गांठ में किए और एक टोपीदार बन्दूक का लाइसैंन्स भी ले आया।

रीछ (भालू)

उन्नीस—

भेड़िये को हांक-हूँककर गड़रिये की स्त्री प्यासी हो आई। भेड़ बकरियों को लेकर नदी किनारे पहुँची। पानी के पास गई। चुल्लुओं से हाथ मुंह धोया। थोड़ी दूर पर एक मगर पानी के ऊपर उतरा रहा था। वह मगर के स्वभाव को नहीं जानती थी। उसने पानी पिया। गर्मियों के दिन थे, नहाने की इच्छा हुई। पानी में उतर पड़ी। कुछ ही क्षण ठहरी थी कि मगर पानी के ऊपर आया और सपाटा मार कर उसको पानी के नीचे ले गया। जब उसने समझ लिया होगा कि मर गई, पत्थरों की खोख या झाऊ की झाड़ी में ले गया और उसको समूचा खा गया।

बड़ी नदियों के किनारे ये घटनायें प्रायः होती रहती हैं। कहार लोग अपने जाल में छोटे मगरों को तो फांस लेते हैं, परन्तु बड़े मगर और नाके इन जालों में नहीं आते।

मगर और नाके में अन्तर है। मगर चौड़ा और ऊँचा होता है, नाका लम्बा। बीस फ़ीट से ऊपर लम्बाई के नाके मैंने देखे हैं।

मगर अधिक घातक होता है। गाय बैलों तक को पानी में दबोच लेता है और डुबोकर मार डालता है। भेड़ बकरी और कुत्ता तो उसके लिये कुछ भी नहीं हैं।

एक बार मैं नदी किनारे प्रातःकाल हाथ मुंह धो रहा था। जल के पास पहुँचने के पहले एक मगर वहीं पड़ा हुआ था, परन्तु मैंने देख नहीं पाया। हाथ मुंह धोते समय मुझको पास

ही तली में कुछ सरकता हुआ दिखलाई पड़ा। मैं तुरन्त उचट कर पीछे हटा। मगर भी लौट गया। मैं पास ही एक पत्थर की आड़ में बैठ गया।

सवेरे के समय मगर जल के पास रेत में लेटने और सोने के लिये आता है। जाड़ों में तो वह देर तक धूप लेता रहता है।

घण्टे डेढ़ घण्टे की प्रतीक्षा के उपरान्त मगर रेत पर आया और चैन के साथ लेट गया। मुझको उसकी खुली आंखें दिखलाई पड़ रही थीं। जब उसने आंखें मूद लीं, यह नहीं अनुमान होता था कि उसके आंखें हैं भी या नहीं।

धीरे से राईफ़िल संभाली, गर्दन का निशाना लिया, और यहां लिबलिबी दबी, वहां मगर केवल ज़रा सा हिला और बहुत शीघ्र समाप्त हो गया।

मर जाने पर भी इसकी देह में इतनी गरमी रहती है कि थोड़ी देर तक स्पन्दन करता रहता है।

जिस स्थान पर गड़रिये की स्त्री को मगर खा गया था, मुझको उस स्थान की चिन्ता हुई। कई बार घण्टों ताक लगाकर बैठा, परन्तु मगर की श्रवणशक्ति इतनी प्रबल होती है कि ज़रा से ऐरे आहट पर वह पानी में खिसक जाता था। दिन दिन भर का श्रम व्यर्थ जाता और मुझको लौटना पड़ता।

एक बार एक मित्र ने मगर के स्वभाव को पास से जांचने की इच्छा प्रकट की और मेरे साथ बैठने का हठ किया। हम लोग पानी के पास आड़ में जा बैठे। दो घण्टे के बाद मगर आकर रेत पर बैठा। मेरे मित्र ने आतुरता के साथ कहा।

'वह आ गया मगर।'

इधर मित्र का वाक्य समाप्त नहीं हो पाया था, उधर मगर पानी में गायब हो गया। वे बहुत धीमें बोले थे, परन्तु मगर का कान तो बहुत तेज़ होता है।

परन्तु एक दिन मगर झंझट में पड़ ही गया। मैं पथरीले किनारे पर दबे दबे, पोले पैरों, जा रहा था। एक पत्थर की ढाल पर पत्थर के रंग का सा ही कुछ दिखलाई पड़ा। मैंने जूते उतारकर एक जगह रख दिये। फिर बहुत धीरे धीरे उस पत्थर के रंग जैसे की ओर बढ़ा। मेरा अनुमान सही निकला। वह एक भयानक मगर था।

जब मैं पन्द्रह फ़ीट के अन्तर पर पहुँच गया तब उसको और अच्छी तरह देखा। बहुत ही कुरूप और भदरंग था। मैंने सिर का निशाना ताककर गोली छोड़ी। मगर पानी के बिलकुल पास था, वह ज़रा सा हिलकर तुरन्त वहीं ख़तम हो गया।

दूसरे महीने में अपने उन्हीं मित्र के साथ इसी किनारे आया। रात को हम लोग अपने अपने गड्ढों में जा बैठे। तेंदुये की ख़बर लगी थी। मैंने उन मित्र को सावधानी के साथ बैठने के लिये कह दिया था और तेंदुये की भयानकता के सम्बन्ध में कुछ बातें बतला दी थीं।

मेरे गड्ढे के सामने से तेंदुआ तो नहीं आया एक भारी भरकम विलक्षण जानवर निकला। मन्द चांदनी रात थी, परन्तु वह गड्ढे के बिलकुल पास से निकला था, इसलिये पहिचानने में कोई बाधा नहीं हुई। वह बड़ा मगर था और

नदी के एक दह से दूसरे दह को कंकड़ों पत्थरों और रेत में होकर जा रहा था। मेरे हाथ में उस समय १२ बोर दुनाली बन्दूक़ थी। नाल में टुकड़ेदार गोली (Split Bullet) वाला कार्तूस था। चलाया, परन्तु मगर तेज़ी के साथ आंखों की ओझल होकर पानी में धस गया। सवेरे मैंने उस स्थल का निरीक्षण किया जहां मगर पर गोली चलाई थी, तब रेत के ऊपर गोली के टुकड़े पड़े मिले !

वास्तव में, मगर पर इस प्रकार की गोली का कोई प्रभाव नहीं होता। सिर या गर्दन पर गोली पड़े तो और बात है, वैसे पीठ पर तो साधारण गोलियां खुजली का ही काम करती होंगी।

मैं अपने उन मित्र के गड्ढे पर गया। वे गड्ढे के पीछे वाले पेड़ पर चढ़े थे। वैसे उनमें बहुत वीरता थी, परन्तु शिकार का अनुभव न होने के कारण उन्होंने पेड़ को ही आश्रय बनाना ठीक समझा था।

जब मैं पेड़ के नीचे पहुँचा उन्होंने अपनी दुनाली बन्दूक़ नाल की तरफ़ से मुझको दी। दोनों घोड़े चढ़े हुये थे, और कार्तूस तो नाल में थे ही। मैंने अपने प्राणों की कुशल मनाते हुये नाल को सिर से ऊँचा करके पकड़ा, साधकर घोड़े गिराये और उन से कहा, 'इस प्रकार घोड़े चढ़ी हुई बन्दूक़ को नाल की तरफ़ से किसी को नहीं देना चाहिये।'

वे हँसकर बोले, 'क्या परवाह !'

दूसरे दिन राइफिल से एक मगर मारकर मैंने उस पर दुनाली की गोली के प्रभाव की परीक्षा करनी चाही। पक्की

गोली उसकी पीठ पर चलाई। गोली उचटकर चली गई, केवल एक खरोंच छोड़ गई। उस रात मगर पर टुकड़ेदार गोली ने क्यों कोई काम नहीं कर पाया था, यह बात अब समझ में आ गई।

मगर का सिर, गर्दन और पेट मार के स्थल हैं। उसकी पीठ के खपटे इतने प्रबल होते हैं कि साधारण हथियार काम नहीं कर सकते। राइफिल की नुकीली गोली निसन्देह उस पर यथेष्ठ काम करती है।

बेतवा का पाट कहीं कहीं चार फर्लांग चौड़ा है। इस नदी में बहुत स्थानों पर टापू हैं। एक बार मैं दो मित्रों सहित नदी के उस पार भ्रमण कर रहा था। नदी में एक टापू उस ढी से दो फर्लांग पर था। टापू के नीचे थोड़ी सी रेत थी, बाक़ी पाट में पानी भरा हुआ था। हम लोग उस पार की ढी पर खड़े-खड़े ऊँचे स्वर में बातचीत कर रहे थे। टापू के नीचे एक बड़ा लम्बा चौड़ा मगर रेत पर पड़ा हुआ था। उसको हम लोगों की ओर से संकट की कोई शंका नहीं हो सकती थी, क्योंकि बहुत दूर थे।

मेरे मित्रों ने प्रस्ताव किया, मगर पर राइफिल चलाओ देखें गोली लगती है या नहीं। मैंने टालाटूली की। मुफ़्त में एक क़ार्तूस क्यों खोता? जानता था कि निशाना न लगेगा। वे लोग न माने। मैंने एक पत्थर पर राइफिल रखकर निशाना साधा और 'धायं' करदी।

अकस्मात्, गोली मगर की गर्दन पर पड़ी, और वह हिल कर रह गया। मगर की गर्दन का लक्ष्य कुछ ही इन्च व्यास

का होता है, परन्तु उस दिन निशाने का जगह पर बैठना एक सम्पात मात्र था, क्योंकि इसी राइफिल से मैंने बहुत निकट के लक्ष्य चुकाये हैं।

एक मगर जब दूसरे से लड़ता है तब नदी में तुमुल नाद होता है। मगरों की उछालों के मारे पानी फट फटकर उत्ताल तरंगों में परिवर्तित हो जाता है और तरंगों पर झाग आ जाते हैं। मगर कभी रेल की सी सीटी बजाकर और कभी तेंदुये जैसी हुंकार भरकर एक दूसरे से टकराते, लिपटते और गुथते हैं। डूबने का उनको कुछ डर ही नहीं, क्योंकि वे घण्टों पानी के भीतर रह सकते हैं। जब एक थक जाता है तब उसका प्रबलतर प्रतिद्वन्द्वी नीचे ले जाता है, फिर पकड़कर पानी के बाहर लाता है। अपने नाखूनी पंजों और बिकट दांतों से उसका पेट फाड़ डालता है।

परन्तु यही मगर जलमानुस से बहुत घबराता है। जलमानुस पानी का सुना कुत्ता है। नदी के जिस भाग में पहुँच जाता है, उसकी मछली, कछुये, मगर सब समाप्त कर देता है या भगा देता है।

जलमानुस होता छोटा-सा ही जानवर है। पूँछ समेत लगभग चार फ़ीट लम्बा और ऊँचा छोटे कुत्ते के बराबर। बहुत चिकना, बड़ा गांठ-गसीला और नाखूनी पंजों वाला। यह बड़ी तेज़ी के साथ पानी में डुबकी लगाता है और उबरता है। झुण्ड में रहता है।

जब मगर से यह लड़ता है, मगर फुफकारी मार कर इसके ऊपर आता है, परन्तु यह उचाट लेकर उसके सिर पर

सवार हो जाता है और गर्दन में अपना नाख़ूनी शिकन्जा कसता है। मगर पानी के भीतर जाता है, परन्तु जलमानुस को पानी में डूबने का तो कुछ डर ही नहीं है, मज़े में चला जाता है और नीचे भी मगर के गले पर अपने पैने नाख़ूनों को गपाता है। मगर ऊपर आता है, परन्तु वहां भी निस्तार नहीं, क्योंकि दूसरे जलमानुस उसके पेट के नीचे पहुँच जाते हैं और नाख़ून ठोकने की उसी क्रिया को पेट पर चालू कर देते हैं। मगर रेत पर भागकर भी त्राण नहीं पाता, क्योंकि जलमानुस बन्दरों की तरह भूमि पर चलते-फिरते और उछलते-कूदते हैं। जलमानुस पेड़ पर भी चढ़ जाते हैं।

एक बार जब अपनी आंखों एक मगर को गाय पर सवार होते देखा तब जलमानुस की बहुत याद आई। यदि वह इस पानी में होता तो मगर साहस न कर पाता।

दिन की बात थी। मैं १२ बोर दुनाली लिये पानी से काफ़ी दूर बैठा था। एक गाय किनारे पानी पीने आई। उसने पानी में मुंह डाला ही था कि मगर ने अपनी भयंकर पूंछ की पछाड़ गाय की देह पर दी। गाय रेत में जा गिरी और मगर उससे जा लिपटा। अभी तक सुना था कि मगर पानी में दबे दबे आकर पैर पकड़ कर घसीट ले जाता है, परन्तु यह व्यापार विलक्षण था। मैं तुरन्त हल्ला करता हुआ दौड़ा, क्योंकि गोली नहीं चला सकता था। एक तो उसका प्रभाव मगर के ऊपर नहीं के बराबर होता, दूसरे गाय पर गोली पड़ जाने का भय था। मगर गाय को छोड़कर भाग गया। परन्तु मगर की पूंछ के वार के कारण गाय इतनी

घायल हो गई थी कि मुश्किल से नदी की ढी पर चढ़ पाई ।

चिरगांव से ४ मील भरतपुरा नाम का गांव झांसी ज़िले में है । बेतवा इस गांव से लगभग एक मील की दूरी पर बहती है । उस पार के पहाड़ और जंगल बड़े सुहावने दिखते हैं । कुण्डार का क़िला इस गांव से ८, ९ मील दूर है । भरतपुरा के तैराक बरसात में आई हुई नदी को तो पार कर ही जाते हैं । वे आई हुई नदी में तैरते हुये कुल्हाड़ी से मगर का सामना भी करते हैं ।

भरतपुरा वालों की गाय भैंसें जब उस पार जंगल में रह जाती हैं तब वे उनको लेने के लिये जाते हैं । उधर से ढोरों को लाते समय कभी कभी मगर से मुठभेड़ हो जाती है । मगर ढोर पर आता है, और ये एक हाथ से ढोर की पूँछ पकड़े हुये, दूसरे में कुल्हाड़ी लिये ललकारते हैं और अपने ढोरों को बचा ले आते हैं ।

मगर फागुन चैत से अंडे देता है । अंडे इसके बड़े बड़े होते हैं । ये उनको रेत में गहरे गाड़ता है । साधारण तौर पर यह मछलियां खाता है । मुंह खोल लिया, पानी फुफकारता रहा, और मछलियों को निगलता रहा ।

बीस—

जंगल में शेर और तेंदुये से भी अधिक डरावने कुछ जन्तु हैं—सांप, बिच्छू और पागल स्यार।

अजगर का तो कुछ डर नहीं है। क्योंकि वह काटने के लिये आक्रमण नहीं करता है, भक्षण के लिये पास आता है और जहां तक मैंने देखा और सुना है मनुष्य से डरता है।

हिरन तक को निगल जाने वाले अजगर देखे गये हैं। चिरगांव से पांच मील दूर बेतवा किनारे एक अजगर ने हिरन अपनी पूँछ की फटकार से पटका और लिपट कर उसके शरीर को चरमरा डाला फिर उसको निगलना शुरू किया। पास ही किसानों के खेत थे। वे रखवाली कर रहे थे। रात का समय था, हिरन की पुकार सुनकर लाठी और कुल्हाड़ी लेकर दौड़े। उन्होंने समझा कि तेंदुये या भेड़िये ने हिरन को दबाया है। जब पास पहुँचे तब देखा अजगर हिरन को दबाये हुये है और निगले जा रहा है।

उन्होंने लाठियों और कुल्हाड़ियों से अजगर को मार डाला और हिरन को छुटा लिया। परन्तु हिरन भी मर चुका था। उन्होने हिरन को छीलछालकर पकाया खाया। सबके सब बीमार पड़ गये। उनको हफ्तों दस्त लगे थे। परन्तु कहा नहीं जा सकता कि अजगर के निगलने के कारण हिरन विषाक्त हो गया था या वे लोग किसी और कारण से बीमार पड़े थे।

काला, गढ़ैंता और उर्दिया सांप भयंकर विषधर हैं। उर्दिया सांप बूंदों और छपकोंदार होता है, देखने में बहुत

सुन्दर, परन्तु काटने पर बहुत ही घातक विषवाला। यह काले से काफी बड़ा होता है। काले और गढ़ैते को सभी जानते हैं। इन सबसे जंगल में भ्रमण करने वालों, विशेषकर गड्ढों में बैठने वालों को सावधान रहना चाहिये। अच्छा यह है कि ये मनुष्यों से डरते हैं, परन्तु ये शिकार के गड्ढों में आ सकते हैं और आ जाते हैं। बैठने के पहले एक छोटे से डण्डे से आस-पास के स्थल को ठोक बजा लेने से रक्षा सुलभ हो जाती है।

बिच्छुओं से भी बचने के लिये यह प्रयोग अच्छा है। मैंने जंगलों में छैः इन्च लम्बे तक बिच्छू देखे हैं। रंग काला, जिनको देखकर रोमान्च हो आवे।

बरसात के आरम्भ में हरे रंग के छोटे सांप दिखलाई पड़ते हैं। सुनते हैं कि ये भी बहुत विषैले होते हैं।

चलने फिरने के लिये, और शिकार में वैसे भी, टांगों में टकोरे चढ़ा लेना बहुत अच्छा है।

सांपों को देखकर छोड़ देना दूसरे मनुष्यों या पालतू जानवरों के साथ घात करने के बराबर है।

पागल स्यार भी जंगल की एक काफ़ी बड़ी व्याधि है। पागल स्यार के बराबर निर्भीक और ढीठ और कोई जन्तु नहीं। इसको तो गांव वाले यथाशक्य, तुरन्त ही नष्ट कर डालते हैं, क्योंकि वे उसके संहारकारी परिणाम को जानते हैं। पागल स्यार जिस मनुष्य, ढोर या कुत्ते को काट खाता है, उसका बचना कठिन हो जाता है। पागल स्यार का काटा हुआ मनुष्य यदि समय पर अस्पताली इलाज पा गया तो बच

जाता है, परन्तु ढोरों को बड़ी मुश्किल पड़ती है, और कुत्ते तो पागल स्यार से पाये हुये विष को बांटते से फिरते हैं।

हमारे यहां लोमड़ी का शिकार कोई नहीं करता और न वह खेती को कोई बड़ा नुक़सान ही पहुँचाती है। इसकी बोली रात के सन्नाटे को जब विचलित करती है, ऐसा लगता है कि वह किसी बड़े जानवर के आने की सूचना दे रही है।

इक्कीस—

जंगलों में जितने भीतर और नगरों से जितनी दूर निकल जायें उतना ही रमणीक अनुभव प्राप्त होता है। पुराने नृत्य और गान तो जंगलों के बहुत भीतर ही सुरक्षित मिलते हैं।

अमरकंटक की यात्रा में कोलों और गोंडों का करमा नृत्य देखा। उसके कई प्रकार होते हैं। वे सब बारी बारी से देखने को मिले।

करमा में स्त्री पुरुष सब शामिल होते हैं। पुरुषों की एक टोली और स्त्रियों की एक टोली। पुरुष-टोली एक क़तार में और सामने स्त्रियों की टोली वह भी पांत में। गायन और नृत्य ढोलकी के वाद्य पर होता है।

गायन सीधा और सरस होता है। गायन का साहित्य किसी प्रेम कथा या जीवन की किसी अवस्था पर मचलता है। मचल-मचल कर ही वे सब गाते हैं और बड़े मोद के साथ नाचते हैं। स्त्रियां घूंघट डाले रहती हैं। हम लोगों के समक्ष वे घूंघट ही डाले थीं। जब वे लोग 'बाहर वालों' के सामने न गाते नाचते होंगे तब, शायद घूंघट की आड़ हटा दी जाती हो।

करमा नृत्य में कला और विनोद दोनों हैं। मैंने करमा का अनुकरण शान्ति निकेतन की एक मंडली में देखा है। करमा स्वास्थ्य और आनन्द देने वाला नृत्य है।

बुन्देलखण्ड के देहातों में, विशेषकर हमीरपुर ज़िले के गांवों में, विवाह के समय स्त्रियों का नृत्य देखा है। इस नृत्य

में एकरसता होती है। बहुत थकाने वाला और, शायद, कम विनोद देने वाला होता है।

देहातों और जंगलों में जो विवाह होते हैं वे वास्तविक उत्सवों का रूप धारण करते हैं।

गोंडों और कोलों में तो विवाह एक बहुत बड़े त्योहार का रूप धारण करता है। इस त्योहार के मनाने में उनको पण्डा पुजारी की बिलकुल ज़रूरत नहीं पड़ती। गोंडों का सहवर्गी बेगा आता है और भांवर पड़वा देता है। बेगा अपने को किसी भी ब्राह्मण से कम पवित्र नहीं समझता—और भोजन में चूहे कउए को भी नहीं छोड़ता।

जब हम लोग नानबीरा से लौटे मार्ग में भूख लगी। साथ में दाल चावल था परन्तु पकाने के लिये कोई बर्तन न था। साथ में एक बेगा था, उससे मिट्टी का बर्तन लाने को कहा। वह पास के एक गांव से तीन-चार मटकियां ले आया। एक में हम लोगों ने पानी भरकर रख लिया और दूसरे में खिचड़ी चढ़ा दी।

एक कहावत है—दो मुल्लों में मुर्गी हराम। इधर हम लोग थे पांच सात। चूल्हा जल रहा था, तो भी उसमें कोई लकड़ी निकाल निकालकर फिर खोंस रहा है, कोई जलती हुई आग को बुझाकर फिर उसका रहा है, कोई हंडी में लकड़ी बार बार टाल रहा है। मतलब यह कि न चूल्हे को चैन और न हडी को। फल यह हुआ कि एक घण्टे की इस क़वायद परेड के बाद हंडी का पानी जल गया और खिचड़ी में से जलांद आने लगी। हमारे दलनायक ने व्यवस्था दी—'उतारो, हंडी को उतारो। खिचड़ी पक गई।'

हण्डी को उतार लिया और चूल्हे को बुझा दिया, क्योंकि हवा चल रही थी, गर्मियों के दिन थे और घने जंगल पास लगे थे। डर लगता था कहीं जंगल में आग न लग जाये।

खिचड़ी के ठण्डे होने के पहले ही आतुरता के साथ महुये अचार इत्यादि की पत्तलें बनाईं, अपनी अपनी समझ में सुन्दर परन्तु गोल के सिवाय रेखागणित के किसी भी कोण से होड़ लगाने वालीं। पर स्वादिष्ट खिचड़ी के लिये अच्छी आकृति वाली पत्तलों की अटक ही क्या ?

जब खिचड़ी परोसी और मुँह में डाली, तब बिलकुल कच्ची। बेगा हम लोगों की झेंप और निराशा पर हँस रहा था। हण्डी में काफ़ी खिचड़ी रक्खी थी। बेगा भूखा था। हम लोगों ने बेगा से कहा कि पानी डालकर इसको फिर से पका कर खा लो। उसने बिलकुल नाहीं कर दी। वह हम लोगों का छुआ हुआ पानी तक नहीं पी सकता था! इसीलिये वह कई मटके लाया था। उसने एक मटका अलग से भरा। अलग ही अपनी खिचड़ी पकाई और मजे में खा गया।

नगरों में रहने वाले लोगों का ख्याल है कि गांवों में रहने वाले लोग अपने बाहर के संसार से अजान रहते हैं। इससे बढ़कर और कोई भूल नहीं हो सकती।

गांव वालों को अभी तक इतना सताया गया है, उनकी इतनी अवहेलना की गई है कि सिधाई और अज्ञान को उन्होंने अपना आवरण बना लिया है। वे उस आवरण को डाले हुये शत्रु और मित्र दोनों के सामने एक समान भावना से आते हैं। जब वे समझ लेते हैं कि मित्र के रूप में 'बाहर' से आया

मनुष्य उनका वास्तविक मित्र या हितचिन्तक है तब वे उस आवरण को हटा देते हैं। उस समय उनका सच्चा स्वरूप दिखलाई पड़ता है। उनकी ठोस बुद्धि, उनका दृढ़ स्वभाव और उनकी तत्परता उस समय पहिचानने में आती है।

मैं एक बार एक कन्धे पर बन्दूक और दूसरे पर अपने थोड़े से बिस्तर लिये जंगल के एक गड्ढे में बैठने के लिये जा रहा था। गड्ढा दो ढाई मील की दूरी पर था। मेरे पीछे एक गड़रिया आ रहा था। उसका मार्ग गड्ढे के पास होकर पड़ता था। गड़रिया मुझको पहिचानता था। आगे बढ़ा और उसने मेरे बिस्तर अपने कन्धे पर टांगने का अनुरोध किया। मैंने नाहीं की, परन्तु उसने बिस्तर छीनकर अपने कन्धे पर रख लिया। मैंने सोचा, मैं इसकी क्या सेवा करूँ? मैंने वार्तालाप आरम्भ किया। मैंने पूछा, 'कहो भाई गांव में क्या हो रहा है?'

उसने उत्तर दिया, 'और तो सब ठीक है, पर ज़मींदार जान खाये जाते हैं।'

प्रश्न—'क्यों? कैसे?'

उत्तर—'जंगल में भेड़ बकरी नहीं चरने देते। कहते हैं लगान दो। हम लोगों ने लगान पहले कभी नहीं दिया। हर साल दो कम्बल देते चले आये हैं सो अब भी देने को तैयार हैं, परन्तु वे लोग कम्बलों के अलावा लगान भी मांगते हैं। हम लोगों ने पहले बेगार कभी नहीं की। अब वे पुलिस और तहसील की बेगार भी कराना चाहते हैं।'

मैंने कहा, 'लड़ाई का ज़माना है इसलिये पुलिस, तहसील ज़मींदार सभी की बन पड़ी है। सब के सब अन्धे हो गये हैं

और आगा-पीछा न देखकर लालच में अन्धाधुन्ध पड़ गये हैं। तो भी, मैं कल आकर तुम्हारे ज़मींदारों को समझाऊँगा। वे लोग मुझको जानते हैं। मेरे समझाने से मान जायेंगे।'

गड़रिये को आश्वासन मिला। अब वह खुला। उसने अपने अभ्यस्त आवरण को हटाया। बोला, 'लड़ाई का क्या हाल चाल है?'

मैंने सोचा इसको क्या बतलाऊँ, जो लोग भूगोल से थोड़ा सा परिचय रखते हैं वे ही लड़ाई में भाग लेने वाले देशों का नाम जानते हैं और वे ही लड़ाई के सम्बन्ध की कुछ बातें समझ सकते हैं। मैंने गोल-मटोल उत्तर देने की चेष्टा की।

लड़ाई के प्रारम्भिक काल की बात थी, जर्मनी और इङ्गलेंड की पैंतरेबाज़ी चल रही थी, परन्तु अभी मुठभेड़ नहीं हुई थी।

मैंने कहा, 'अभी जर्मनी से अंग्रेजों की झपटा-झपटी नहीं हुई है। दूसरे देशों में युद्ध हो रहा है। अपने देश से बहुत दूर—दो हजार कोस पर।'

वह मुस्कराकर बोला, 'जरमनी ने पोलैण्ड को तो जीत लिया है अब फ़्रांस को रोंदने वाला है।'

मैं इस वाक्य को सुनकर दङ्ग रह गया। जंगलों और पहाड़ों में भेड़-बकरी चराने वाला गड़रिया पोलैण्ड और फ्रांस के नाम जानता है। और यह भी जानता है कि जर्मनी ने पोलैण्ड को जीत लिया है और फ्रांस को रोंदना चाहता है, मैंने कुतूहल के साथ पूछा, 'रूस देश का नाम सुना है?'

उसने उत्तर दिया, 'सुना है। वहां किसानों और मज़दूरों की पञ्चायत का राज्य है।'

मैंने कहा, 'अपने देश में भी किसानों और मज़दूरों का राज्य होगा। वह दिन जल्दी आ रहा है।'

गड़रिया बिना किसी बनावट के बोला, 'पर अपने यहां के किसान मज़दूर ज़मीदारों और साहूकारों का खून बहाकर पञ्चायत नहीं बनायेंगे।'

'क्यों?'

'क्योंकि हम लोग राक्षस नहीं हैं।'

मुझको तुरन्त अपने दरिद्र कहलाने वाले, परन्तु महा गौरवमय, देश के उस तपस्वी की याद आ गई जिसको इंगलैंड के एक मानव-द्रोही घमंडी ने 'नंगा फ़कीर' कहा था परन्तु जिसको उसके देश वाले महात्मा और 'बापू' कहते हैं।

बापू की निर्भीक अहिंसा की नीव देश की वह संस्कृति है जो इस अपढ़ गड़रिये के भीतर से उन शब्दों में होकर अनायास निकल पड़ी थी।

मैंने पूछा, 'तुम्हारे गांव में कभी झंडा उठाया गया?'

उसने उत्तर दिया, 'हां, हां, तिरंगा झंडा। कई बार उठाया गया। और, हम लोगों ने कई बार गाया 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा।'

मैं उस दिन गड्डे में नहीं बैठा। सीधा उसके गांव में गया। ज़मीदारों को समझाया। उन्होंने हां हां तो कर दी और कुछ महीनों गड़रियों को तंग भी नहीं किया, परन्तु वह प्रथा, वह प्रणाली ऐसी है कि उनकी हां हां बहुत दिनों नहीं चली।

बाईस—

शिकार के साथी यदि हंसोड़ न हों, और चुप भी रहना न जानते हों तो सारी यात्रा किरकिरी हो जाती है। मुझको सौभाग्यवश हंसोड़ या चुप्पे साथी बहुधा मिले।

संगीताचार्य आदिलखां—वह अपने को कभी कभी परोफ़ेसर कहते हैं—काफ़ी हंसोड़ भी हैं। शिकार में दो एक बार मेरे साथ गये। जंगल में तो उन्होंने नहीं गाया, गाने की धुन में तो उनको तबले तमूरे की अटक ही नहीं रहती, परन्तु शिकार से लौटने पर उन्होंने तानों की वर्षा कर दी।

जब शिकार के मोर्चों पर नहीं होते तब बातें भी काफ़ी करते हैं।

एक बार यात्रा करते हुये लौट रहे थे। गाड़ी के पीछे सामान रक्खा था, बीच में मेरे जूते रक्खे हुये थे। उस्ताद लखनऊ सम्बन्धी अपने कुछ अनुभव सुना रहे थे।

कहते जाते थे 'एक बार मैं लखनऊ की एक रईसी दावत में फँस गया। खाने वालों के सामने सजासजाया बढ़िया खाना, पर थोड़ा थोड़ा ही। इस पर भी इतना तकल्लुफ़ कि जो देखो सो परोसने वाले से कहे—अजी बस, अजी बस, यही पड़ा रह जावेगा, ज़्यादा मत परसो। मैंने सोचा इनको तकल्लुफ़ में भी मात देना पड़ेगा। मैंने ग्रास उठाया, सूंघा और रख दिया, सूंघा और रख दिया! मेरी काररवाई को देखकर लखनऊ के एक साहब ने कहा—उस्ताद, आप तो कुछ भी नहीं खा रहे हैं, यह क्या! मैंने जवाब दिया, साहब, मैं तो खुशबू से ही पेट

भरने वालों में हूँ। जब दावत समाप्त हो गई, आंतें कुलबुला उठी। मैंने बहाना लेकर बाज़ार की रास्ता पकड़ी और एक दूकान पर जाकर अपने बुन्देलखण्डी पेट को डाटकर भरा।'

उस्ताद ने हँसते हुये एक दूसरी कहानी छेड़ी : 'लखनऊ से एक साहब शिकार के सिलसिले में झांसी आये। बिकट बीहड़ जंगल में पहुँचे। मुझसे बोले, 'मियां आपकी बन्दूक़ गोली बरसाती है और हमारा मुंह ही गोले छोड़ देता है।' मैं जवाब देने के लिये परेशान हो रहा था कि एक जगह सांभर की लेंड़ियों का ढेर दिखलाई दिया। मैंने लखनऊ वाले मिहमान से कहा, 'जनाब ज़रा उस ढेर को देखिये। हमारे यहां के जानवर लोहे की लेंड़ियां करते हैं। मिहमान मारे पसीने के तर हो गये।'

उस्ताद की गप ख़तम हुई थी कि गाड़ी के पीछे की तरफ़ आंख गई। सब सामान, बिस्तरे विस्तरे, ग़ायब। दुपहरी का समय था, परन्तु गपशप में सामान का खिसक जाना मालूम ही न पड़ा। सामान के साथ मेरे जूते भी चल दिये थे। सामान और बिस्तरे उस्ताद के ही थे! इसलिये वे सारी गपशप भूल गये।

बिचारे गाड़ी पर से उतरे। काफ़ी लम्बी दौड़ धूप की। सामान मार्ग में पड़ा मिल गया। मेरे जूते खो गये।

परन्तु कभी कभी ऐसे साथी भी मिल जाते हैं कि त्राहि-त्राहि करनी पड़ती है।

तेंदुये या शेर के लिये जो मचान बांधा जाय उस पर अकेले बैठना सबसे अच्छा। कोई साथ में बैठे तो पहली शर्त

यह है कि बातचीत बिलकुल न करे और दूसरी यह कि खांसता न हो।

यदि ज़रा सी भी आहट हो गई तो चाहे मचान पर कोई दिन रात बैठा रहे, शेर तो आवेगा नहीं, तेंदुआ शायद दुबारा आ जाय, क्योंकि वह बहुत ढीठ होता है।

तेईस—

शेर के सम्बन्ध में शिकारियों के अनुभव विविध प्रकार के हैं। सब लोगों का कहना है कि मनुष्य-भक्षी शेर के सिवाय सब शेर मनुष्य की आवाज़ से बहुत डरते हैं। जब शेर की हँकाई होती है और ऐसे जंगल की हँकाई प्रायः की जाती है, जिसमें उसने गायरा किया हो, क्योंकि गायरा करके वह आस-पास ही कहीं छिप जाता है तब लगान वालों को पूरी चुप्पी साधकर बैठना पड़ता है। शेर को लगान वालों के पास भेजने के लिये पेड़ पर कुछ लोग बैठ जाते हैं; यदि शेर भटक कर उनकी ओर आता है तो वे कंकड़ बजा देते हैं और शेर मुड़कर लगान वालों की ओर चला जाता है।

कुछ लोगों का अनुभव है कि शेर आदमियों के बीच में से ढोर को पकड़ ले जाता है, परन्तु ऐसे लोगों का यह भी कहना है कि आदमियों के हल्ला-गुल्ला करने पर शेर डरकर, छोड़कर भाग जाता है।

अनेक शिकारी यह कहते हैं कि घायल होने पर ही शेर, शेर बनता है; वैसे तो वह डरपोक जानवर है। सदा अपनी रक्षा की चिन्ता में रहता है।

एक अंग्रेज़ शिकारो ने घायल शेर के रोमांचकारी पराक्रम का वर्णन किया है।

अंग्रेज़ और उसकी पत्नी, दोनों शिकार खेलने गये। वे निकट मचानों पर पृथक् पृथक् बैठे। हँकाई हुई। शेर पहले पुरुष वाले मचान के पास आया। वह अपनी पत्नी को शिकार

खिलाना चाहता था, इसलिये उसने बन्दूक़ नहीं चलाई। शेर उसकी पत्नी के मचान के पास पहुँचा। उसने बन्दूक़ चलाई। शेर घायल हो गया। घायल शेर ने उस स्त्री को देख लिया। शेर मचान पर पहुँचने के लिये पेड़ पर चढ़ा। स्त्री ने अपनी बन्दूक़ की गोलियां खर्च कर डालीं, परन्तु शेर न मुड़ा।

उसका पति यह सब देखकर बहुत घबराया। शेर स्त्री के निकट पहुँचता चला जा रहा था। अंग्रेज़, पत्नी को चोट पहुँचने के भय से बन्दूक़ नहीं चला रहा था।

पुरुष अपने मचान पर से उतरा। शेर झपट मारकर स्त्री पर टूटना ही चाहता था कि उसने अपनी पत्नी को बरकाते हुये गोली चलाई। स्त्री डर के मारे मचान से नीचे जा गिरी और घायल शेर गोली खाकर जमीन पर जा लुढ़का। स्त्री बच गई। शेर मर गया। शेर सम्बन्धी और अनेक मनोरंजक घटनाये हैं।

शेर का मेरा अनुभव यदि अन्य शिकारियों की अपेक्षा अधिक विचित्र नहीं है, किन्तु समकक्ष अवश्य होगा।

अप्रैल, सन् १९४६ की बात है। मैं ओरछा राज्य (श्यामसी) वाले फार्म पर था। इस फार्म के निकट ही राज्य का रक्षित वन है। जानवर तो उसमें कम हैं, परन्तु जंगल पर्वत मय होने के कारण सुन्दर है।

मेरे पास शिकार खेलने का लाइसेंस था। एक दिन पहले तक काफ़ी परिश्रम कर चुकने के कारण सोचा कि जंगल की सैर कर आऊँ। बैलगाड़ी पर गया।

मेरा फार्म-प्रबन्धक बिन्देश्वरी गाड़ी हांक रहा था। गाड़ी में मेरे पास एक बुड्ढा और बैठा था। फार्म से गाड़ी लगभग

६॥ बजे सुबह चली। चार-पांच फर्लांग चलने के उपरान्त सूरज ऊपर चढ़ आया था।

फार्म और रक्षित वन के बीच सिंगा नाला है। नाले की चढ़ाई साधारण है। चढ़ाई पार करते ही सघन वन मिलता है। उसी स्थान पर एक छोटा सा नाला ऊपर से आकर उस नाले में दाईं ओर मिला है। नाले पर हींस, मकोय, करधई, नेगड़ और पलाश के छिटपुट पेड़ हैं।

मैं आगे की ओर मुंह किये था, एक बुड्ढा बगल में। बैल मट्ठर थे और धीमे-धीमे चल रहे थे।

बुड्ढे ने मेरी बगल में धीरे से कुहनी का स्पर्श किया और कहा, 'नाले के ऊपर और पत्तों के पीछे चीतल खड़ा है।'

मैंने तुरन्त उस ओर देखा। गाड़ी खड़ी करवा दी। पत्तों के पीछे शेर खड़ा था। खरी छौहों वाला दीर्घकाय पूरा शेर। बुड्ढे ने पहले कभी शेर न देखा था, इसलिये उसे चीतल का भ्रम हुआ।

मैंने बिन्देश्वरी और बुड्ढे से कहा, 'नाहर है।' वे दोनों उत्सुकता के साथ उसे देखने लगे। बन्दूक़ मेरी तैयार थी, परन्तु लाइसैंस में शेर के शिकार की अनुमति न होने के कारण, बन्दूक़ चलाने का लालच तक मन में न आया। परन्तु मुझको एक कल्पना सूझी।

लोग कहते हैं कि मनुष्य की आवाज़ पर शेर भाग जाता है, परन्तु वह अडिग रहा, और मैंने ज़ोर के साथ बातचीत की थी, तो भी वह नहीं हटा था। मैंने शेर की हुँकार-गर्जन का अनुभव अपने कण्ठ से किया। मै कम से कम २५ बार गर्जा।

फिर भी शेर वहां से न हिला ।

मैंने सोचा, इतना खेल काफी है । गाड़ी आगे बढ़वाई । मुश्किल से चालीस-पचास कदम बढ़ी होगी कि शेर दायीं ओर चलता हुआ बिलकुल आड़ा आ खड़ा हुआ । हम लोगों के और उसके बीच में कोई आड़ नहीं थी, न एक पत्ता और न एक सींक । इस बार गोली चलाने का लोभ मन में हुआ, परन्तु लाइसेंस की बाधा के कारण रुक गया ।

शेर पूर्व दिशा की ओर था । उसके ऊपर से सूर्य की किरणें रिपट रही थीं । गाड़ी से वह पचास-साठ डग के अंतर पर होगा । मुझको फिर शरारत सूझी । मैंने फिर उसके गर्जन की नकल की । अबकी बार शेर ने अपना जबड़ा ज़रा नीचे को लटकाया और अगला पञ्जा लगभग एक इञ्च ज़मीन से उठाकर फिर रखा, मानो सोच रहा हो कि इस अभद्रता का क्या उत्तर दूं । मुझको भी सन्देह हुआ । दाल में काला समझ कर मैंने गाड़ी हँकवाई ।

मार्ग में एक मोड़ था । लगभग पचास गज़ का । इस मोड़ से शेर नहीं दिखलाई पड़ रहा था, परन्तु जैसे ही मोड़ साफ हुआ, देखा कि शेर गाड़ी के पीछे-पीछे आ रहा है ।

मै समझ गया कि शेर चिढ़ गया है और उसकी नियत में फर्क है, शायद आक्रमण करेगा ।

मैंने बिन्देश्वरी से कहा, 'गाड़ी तेज चलाओ ।' उसने बहुत प्रयत्न किया, यहां तक कि बैल को ठोकर मारते-मारते एक पैर का जूता खिसककर गिर गया, परन्तु बैल मट्ठे थे, इसलिये न बढ़े । बैलों ने शेर को नहीं देखा था, और पश्चिम का

पवन होने के कारण उन्होंने शेर की गन्ध भी नहीं पाई थी, नहीं तो गाड़ी को फेंक-फांककर भाग जाते ।

शेर के मार्ग में जूता आया । उसने एक छोटी-सी छलांग मारकर इस अपशकुन को पार किया ।

बिन्देश्वरी चुप्पा बहादुर है । उसका धीरज उसकी गांठ में था, परन्तु बुड्ढे के चेहरे पर मैंने घबराहट के लक्षण देखे । वह पीछे बैठा था, डर लगता था कहीं, वहीं का वहीं न टपक जाये । मैंने अपने दोनों साथियों को चिल्लाकर ढाढ़स दिया ।

मैंने शेर पर गोली न चलाने का निश्चय कर लिया था, क्योंकि मैं ओरछा-नरेश के सौजन्य का अपमान नहीं करना चाहता था ।

परन्तु इधर अकेले मेरे ही नहीं, मेरे दो साथियों के प्राणों पर आ बनी थी, जिसमें बिन्देश्वरी तो मेरे कुटुम्ब का एक अंग-सा ही है ।

गाड़ी अपनी गति से चली जा रही थी । शेर मानों नाप नापकर अपने और गाड़ी के बीच के अन्तर को कम करता चला आ रहा था ।

मैंने पूरे ज़ोर के साथ चिल्लाना शुरू किया—'हट जा,' 'भाग जा,' 'कमबख्त,' अभागे हट जा', 'भाग जा ।'

मैं इतना चिल्लाया कि अन्त में मेरा गला बैठने लगा । सुनसान जंगल में मेरी चिल्लाहट गूँज-गूँज जा रही थी । चिल्लाहट के कारण मेरे कान सनसना रहे थे, परन्तु हम लोग भयभीत नहीं हुये थे ।

जब-जब मैं चिल्लाहट को और अधिक कठोर और भीषण बनाता, तब-तब शेर ज़रा सा, बहुत ज़रा-सा सहमता जान पड़ता, परन्तु वह रुका नहीं। उत्तरोत्तर अपने और गाड़ी के अन्तर को कम करता चला आ रहा था।

उसके पञ्जों से नाखून निकल निकल पड़ रहे थे, मूछें खड़ी थीं, बड़ी-बड़ी आंखें जल रही थीं।

दो फर्लांग चलने के बाद अन्तर केवल पच्चीस तीस कदम का रह गया था।

चिल्लाते-चिल्लाते मेरा गला लगभग वैठ गया था। शेर को केवल दो लम्बी छलांगें मारने की कसर थी कि हम तीनों की हड्डी पसली एक हो जाती। यदि भागने वाले तेज़ बैल होते, तो भी पार नहीं पा सकते थे, क्योंकि शेर भी उसी अनुपात में अपना डग बढ़ाता।

अब केवल एक विकल्प कल्पना में आ रहा था—या तो शेर गाड़ी पर कूदकर हम लोगों को चबाता है, या फिर उस पर राइफिल चलाकर उसकी गति को कुण्ठित करना चाहिये।

परन्तु इस विकल्प में एक बड़ी बाधा थी—पहाड़। ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर गाड़ी चल रही थी। शेर उल्टा-सीधा हम लोगों की ओर बिना रुके हुये चला आ रहा था। निशाना नहीं बांधा जा सकता था। ऐसी परिस्थिति में वह शायद घायल ही होता और फिर घायल शेर वास्तव में शेर हो जाता है। फिर वह किसी हालत में भी हम लोगों को न छोड़ता।

तब एक और उपाय सूझा। मैंने सोचा, शेर के आगे, ज़रा अन्तर पर गोली छोड़नी चाहिये। शायद बन्दूक की आवाज़

ग्रौर गोली से उड़ी धूल के कारण, डरकर लौट जाय। शायद गोली से उचटी हुई धूल उसकी ग्रांखों में पड़ जाय। तब तक हम लोग, मन्थर गति से ही सही, जान बचा ले जायेंगे। ग्रौर यदि यह उपाय विफल हुग्रा तो एक ग्रन्तिम संकल्प वही था—ताक कर शेर के सिर पर गोली चलाना। फिर लगे कहीं भी।

मैंने तुरन्त बढ़ते हुये शेर के सामने गोली चलाई, ऐसी कि उसके फुट या दो फुट ग्रागे पड़े। गोली चलते ही ग्ररर्राटे का शब्द हुग्रा। उसके सामने धूल भी उड़ी। शेर की हिम्मत डिग गई।

वह लौट पड़ा ग्रौर जंगल में विलीन हो गया। हम लोग ग्रपने प्राणों की कुशल मनाते हुये घर लौट ग्राये।

चौबीस—

लौटने पर किसी ने कहा तलवार पास रखनी चाहिये, किसी ने कहा छुरी।

तलवार और छुरी का उपयोग शिकार में हो सकता है, परन्तु मैं तलवार से छुरी को ज़्यादा पसन्द करूँगा और छुरी से भी बढ़कर लाठी को, और लाठी से बढ़कर कुल्हाड़ी को। लाठी और छुरी का विवाद बहुत पुराना है। सटकर लड़ने में छुरी बहुत काम दे सकती है। परन्तु अच्छी लाठी, लाठी ही है। तो भी पास में एक अच्छी लम्बी छुरी का या अच्छी कुल्हाड़ी का रखना उपादेय है।

हथियारों के विकल्प के विषय पर बहुत विवाद है। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। जिनके पास अटूट साधन और समय है और जिनको अपना जीवन शिकार के अन्चल में भेंट करना है। वे भिन्न बोरों की दर्जनों बन्दूक़ें रखते हैं, परन्तु मेरी समझ में एक बारह बोर दुनाली और एक प्रबल राइफ़िल अल्प साधन और स्वल्प अवकाश वाले के लिये काफ़ी हैं। राइफ़िल के बोरों में मुझको तो तीस बोर अच्छा जान पड़ता है। इसकी मुहारी गति (muzzle velocity) और मुहारी शक्ति (muzzle energy) सन्तुलित होती है। यदि बड़े शिकार के लिये प्रबलतर बन्दूक़ ही वान्छित हो तो पांच सौ बोर या चार सौ पचास—चार सौ बोर वाली राइफ़िल बहुत अच्छी है। एमिरिका—संयुक्तराष्ट्र—के प्रधान (प्रेसीडेंट) प्रथम रूसवेल्ट नामी शिकारी थे। उनको एफ़्रिका के

सिहों के मारने का बहुत शौक़ था—उन्होंने मारे भी बहुत थे। उनकी सम्मति में चार सौ पांच बोर विन्चैस्टर राइफ़िल सिंह की औषध थी (medicine gun for Lions) परन्तु बात अपने अपने पसन्द की है। और, वास्तव में अच्छा हथियार वह है जो अपने हाथ को लग जाय।

दूसरा प्रश्न कार्तूसों का है। बारह बोर बन्दूक़ के लिये बिलकुल पास (लगभग पन्द्रह फ़ीट के अन्तर पर) चलाने के लिये एल जी (हिरनमार छर्रा) बहुत अच्छा है, परन्तु सुअर इत्यादि बिकट जानवरों के लिये तो टूटी गोली (Split Bullet) वाला कार्तूस ज़्यादा अच्छा। राइफ़िल के लिये नरम नोक वाला कार्तूस (Soft Nosed Bullet) ही काम का है। पक्की गोली (Hard Ball) प्रायः निराशा और दुर्घटना का प्रत्यक्ष कारण बनती है।

कुछ लोग पिस्तौल या रिवाल्वर के भरोसे शिकार खेलने की इच्छा करते हैं। ये हथियार नज़दीक से आत्मरक्षा के बड़े अच्छे साधन हैं, परन्तु शिकार के लिये तो बहुत कम उपयोगी हो सकते हैं।

पच्चीस—

यदि गांव वालों को शिकारी की सहायता नहीं करनी होती है तो वे कह देते हैं कि जंगल में जानवर हैं तो ज़रूर पर उनका एक ज़माने से पता नहीं है। सहायता वे उन लोगों की नहीं करते जिनसे उनको कोई भय या आशंका होती है। जिन शिकारियों को वे अपने अनुकूल समझते हैं उनके साथ बर्ताव बिलकुल उल्टा होता है। उनसे कहेंगे, 'ढेरों जानवर हैं, मुल्कों गाड़ियों, खीटों !'

जब शिकारी इन 'असंख्य' जानवरों की तलाश में निकलता है, तब मिलता उसको कुछ भी नहीं है—कभी कभी ऐसा हो जाता है।

असल में जानवर कुसमय या अनुपयुक्त स्थान पर नहीं मिलते चाहे जैसे बड़े जङ्गल में कोई चला जाय।

मुझको प्रतिकूल वातावरण में जाने का बहुत कम अवसर मिला है। परन्तु अनुकूल ग्रामों में ही काफ़ी निराशायें पल्ले पड़ी हैं। दोष गांव वालों या जानवरों का नहीं है। कई मौक़ों पर तो सारा दोष शिकारी या शिकारी के सहयोगियों के ही मत्थे जाना चाहिये और गया।

यहीं शिकारियों की गपबाज़ी के विषय में भी दो शब्द कहना अनुपयुक्त न होगा। जब शिकारी की गोली चूक जाती है तो बहुधा उसको मालूम हो जाता है कि निशाना खाली गया परन्तु वह प्रायः कहता यही है, जानवर को लग गई है, घायल भाग गया है। जब जानवर के घायल होने का चिह्न

चाक ढूँढ़ा जाता है, तब जंगल भर में उसका कुछ पता नहीं लगता। निस्सन्देह कभी कभी घायल जानवर के शरीर से बिलकुल रक्त नहीं निकलता, परन्तु सभी ख़ाली निशानों के लिये ऐसा नहीं कहा जा सकता।

शायद शिकारी योजना बनाकर झूठ नहीं कहता। आत्म गौरव या गर्व उसके अचेतनमन में झूठ बोलने के लिये पहले से ही जगह बनाये रहता है। ऐसा निशाना ख़ाली जाने पर जो जानवर के बिलकुल नज़दीक से चूका हो तुरन्त ही शिकारी के मन में एक धारणा उत्पन्न करता है—'निशाना लग गया होगा', 'निशाना लगने का शब्द तो हुआ था,' परन्तु जब थोड़ी देर में उसको विश्वास हो जाता है कि चूक हुई है तब भी वह सच्ची बात नहीं बतलाता।

अधिकांश शिकारियों को मैंने क्रोधी नहीं पाया। परन्तु जब हँकाई में कोई जानवर न मिलता तब भरतपुरा वाले मेरे मित्र बहुत खिसिया जाते थे। हकैयों को डाटते या किसी न किसी को फटकारते।

उन्होंने छुटपन में बहुत कुश्ती-कसरत की थी—इतनी कि वे ज़िले के नामी पहलवानों में थे। परन्तु बहुत दिनों से व्यायाम छोड़ देने के कारण स्थूल हो गये थे और अधिक दौड़धूप में उनको हांफ आ जाती थी, इसलिये जब शिकार में उनको कुछ न मिलता तो मिहनत आंस जाती थी।

एक बार जब क्रोध ख़र्च करने के लिये उनको सामने कोई न मिला, तब मकान के सामने एक चारपाई पर लेट

गये। आस-पास कुत्ते थे ही, उन्होंने अपने क्रोध और गालियों के खज़ाने को कुत्तों पर, लेटे लेटे ही, बरसा डाला।

हमारी भाषा में गालियों की यों भी कोई कमी नहीं है, उन्होंने नई नई भी अनेक बनाईं जो कुत्तों की कई पीढ़ियों को ही अपने चक्कर में घसीट नहीं लाईं बल्कि उनके कल्पित या वास्तविक मालिकों के पुरखों और सगोत्रजों तक को अपनी कठोर कृपा से वंचित न रख सकीं।

मेरे ये मित्र निरामिष-भोजी थे, परन्तु शिकार के व्यसनी। ऐसे भी लोगों का संग हुआ है जिन्होंने कभी शिकार नहीं खेली।

एक बार मेरे एक जैन मित्र मेरे साथ घूमने के लिये गये। उनका विचार शिकार खेलने का न था और न इस प्रयोजन से मैंने अपने साथ उनको लिया ही था। कुछ हिरन देखकर उन्होंने कहा, 'इनका मारना अनुचित है। ये किसी को हानि नहीं पहुँचाते।'

मुझको बहस नहीं करनी थी, क्योंकि जो लोग प्रत्येक प्रकार की हिंसा से दूर रहना चाहते हैं उनको शिकार-वृत्ति में उपनीत करने का मेरा या किसी भी शिकारी का काम नहीं है। मुझको चुप देखकर वे स्वयं कहने लगे, 'परन्तु यदि तेंदुआ या शेर मिले तो अवश्य बन्दूक़ चलाऊँ।'

मुझको भी कुछ कहना पड़ा, 'क्यों? तेंदुये या शेर ने आपका क्या ले लिया है?'

उत्तर मिला, 'ये हिंस्र पशु हैं। इनको मारने में मन को कोई बाधा प्रतीत नहीं होती।'

मुझको किसी पक्ष के समर्थन करने का आग्रह नहीं था, तो भी मेरे मुंह से निकल पड़ा, 'हां ये हिरनों को खाते हैं और हिरन मनुष्यों की खेती को खाते हैं।'

एक दूसरे जैन मित्र ने तेंदुये की शिकार खेल ही डाली। मचान पर बैठने के पाव घण्टे बाद तेंदुआ आया। उनको बन्दूक़ चलाने का अभ्यास बहुत कम था। चलाई, परन्तु ख़ाली गई; तेंदुआ भाग गया।

कुछ लोगों को अपनी शिकार के स्मारकों से घर भरने का बड़ा शौक होता है। यदि इनके लिये कुछ अपना भी खून बहाया गया हो तो उन स्मारकों में खेल की कुछ छलछलाहट मिलेगी परन्तु यदि वे शिकार के सहयोगियों के रक्त में सने हुये हैं तो मन में ग्लानि उत्पन्न होती है।

झांसी के पड़ोस में ही एक रियासत के राजा शिकार के बहुत व्यसनी हैं। शेर तो उन्होंने इतने मारे हैं कि अपने महल के एक बड़े कमरे में उसी उसी की खालें फ़र्श और दीवारों पर हैं। मुझे आश्चर्य था कि छत को क्यों खालों से नहीं मढ़ा गया है!

इनकी शिकार अधिकतर हंकाई की होती है। उनके मचान के पास से शेर को हांकने का प्रयत्न किया जाता है। फिर शेर का मारा जाना हाथ की सफ़ाई और बन्दूक़ की शक्ति पर निर्भर है। उनके एक हांके में शेर निकला। और गोली से घायल होकर जंगल में घुस गया। राजा के एक जागीरदार को घायल शेर की खोज के लिये जाना पडा।

शेर काफ़ी घायल हो गया था, परन्तु उसमें बदला लेने के लिये अभी बल बाक़ी था।

घायल शेर जागीरदार पर टूट पड़ा। उसने अपनी थप्पड़ से उनका कन्धा फाड़ दिया और एक आंख को खरोंच डाला। वे नीचे पड़ गये और शेर ऊपर हो गया। वह उनको तुरन्त खतम कर देता, परन्तु पास ही एक शिकारी और था। उसने बिलकुल पास आकर ऐसे अन्दाज के साथ गोली चलाई कि नीचे पड़े हुये जागीरदार बच जायें और शेर मारा जाये। ऐसा ही हुआ।

कन्धे और आंख के इलाज में महीनों लग गये, परन्तु वे बच गये। जिस आंख को शेर ने खरोंचा था उस आंख से उनको दिखलाई तो पड़ा, परन्तु उसका स्थान बदल गया। यह घटना एक मित्र की आंख की देखी है।

इन्हीं की एक आंख देखी घटना और है, परन्तु उसका अन्त भयकर हुआ।

एक बड़े शिकारी हांके की शिकार में बिना मचान के शिकार खेलने लगे। वे शेर की दाब में आ गये। चित गिर पड़े। शेर ने दोनों पंजे उनकी कमर के ऊपरी भाग पर रक्खे और उनके मुंह के पास हुङ्कार भरी और छोड़कर चला गया। इतनी ही दबोच के कारण उनका फेफड़ा फट गया और मुंह, आंखों तथा नाक से खून आ गया। थोड़ी देर बाद उनका देहान्त हो गया।

मैं भी हंकाई की शिकार में शेर के लिये, कई बार, धरती पर ही खड़ा रहा हूँ। परन्तु शेर ऐसी स्थिति में कभी नहीं

मिला। मैं मन में अवश्य यह मनाता रहा हूँ कि शेर न निकले तो बहुत अच्छा, पर निकलता तो शायद बन्दूक़ चलाता— फिर जो कुछ होता।

जानवरों की खाल या सिर को स्मारक के हेतु रक्षित रखने के लिये खाल को साफ़ करवा कर धरती पर फैला देना चाहिये, खाल सिकुड़ने न पावे इसके लिये उसके सिरों पर छोटी छोटी खूंटियों का गाड़ देना अच्छा है। फिर बारीक बटा हुआ निमक मलकर खाल को सुखा लिया जाय। कुछ लोग फिटकरी काम में लाते हैं। परन्तु गांवों में हर जगह फिटकरी प्राप्त नहीं होती। निमक सुलभ है और अच्छा भी है।

इसके बाद खाल को किसी कारीगर के हाथ में दे देना ठीक होगा। इस प्रकार की कारीगरी करने वाली कई कम्पनियां बम्बई, मद्रास इत्यादि में हैं, परन्तु बड़े खर्च का नखरा राजा रईसों के लिये हैं।

जिस महल के कमरे की सजावट का ऊपर वर्णन किया गया है उसमें एक लाख रुपये से अधिक खर्च हो गया होगा। उस कमरे में घुसते ही सौन्दर्य कम और बीभत्स अधिक दिखलाई पड़ता है।

हमारा नवीनतम प्रकाशन

प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार

श्री वृन्दावनलाल वर्मा की महान ऐतिहासिक कृति

"माधव जी सिंधिया"

अट्ठारवीं शताब्दि का—

१. अखिल भारतीय ऐतिहासिक चित्रण।

२. ऐतिहासिक तथ्यों और सत्यमूलक कल्पना का मिश्रण।

३. विषम, जटिल और अति कठिन परिस्थितियों में माधव जी का विकास।

४. नृशन्सता, नीचता, छल कपट, शौर्य और रोमान्स का दिग्दर्शन।

५. इन सब के ऊपर पात्रों का अद्भुत चरित्र-चित्रण और कथानक की रोचकता आप माधव जी सिंधिया में पढ़िये।

[यह वह समय था, जिसके लिए कहा जाता है कि माराठे और जाट हल की नोक से, सिक्ख तलवार की धार से और दिल्ली के सरदार बोतल की छलक से इतिहास लिख रहे थे]

पृष्ठ ५९०] सचित्र आकर्षक मुद्रण [मूल्य ६) रु०

प्रकाशक—मयूर प्रकाशन, झांसी।